



महाकवि उद्दण्ड कृत

कोकिल सन्देश-काव्य का समालोचनात्मक अध्ययन A Critical Study of Kokil-Sandesa by Uddanda

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की एम० फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध

निर्देशक :—

डॉ० रघुनाथ पाण्डेय

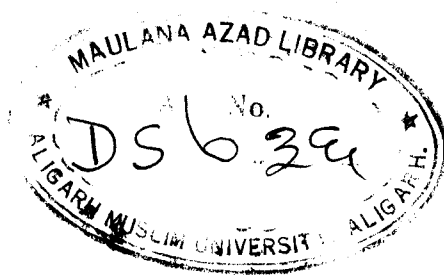
प्रवक्ता, संस्कृत विभाग
एम० ए०, पी-एच० डी०
व्याकरणाचार्य, पालिशास्त्राचार्य
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़ ।

प्रस्तुतकर्ता :—

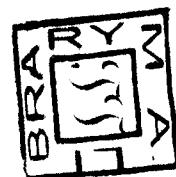
कुमारी सुधा गर्ग

संस्कृत विभाग,
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,
अलीगढ़ ।

जून, १९८०



And In Computer



27 OCT 1985



DS736

CHECKED-2002

4/1

DS 736

C E R T I F I C A T E

Certified that the Dissertation entitled
A critical study of Kephil-Sandesa by
Uddanda
presented by Miss. *Sandha George*.....

is an original work. It is the result of
Miss. *Sandha George*...'s own efforts.

She has fulfilled all the conditions laid
down in the ~~Academic~~ ordinances in this behalf.

Dated. *2.2.68*

R. Pandey
Supervisor.

प्राक्कथन

प्रस्तुत ग्रंथ बलोगद सुस्तिम विश्वविद्यालय
को मास्टर आफ फिलासफी की उपाधि हेतु एक लघु शोध प्रबन्ध
है।

केरल प्रान्त में रहित संस्कृत संदेश काव्यों में
महाकवि उदयक कृत कोकिल संदेश काव्य का महत्वपूर्ण स्थान है।

महाकवि कालिदास कृत भण्डूत की प्रकृति
परम्परा पर आधारित यह एक उत्कृष्ट संदेश काव्य है।

समाजीवनात्मक अध्ययन हेतु यह नूतन काव्य
सुनि उपलब्ध एवं रुचिपूर्ण प्रतीत हुआ। तत्फलस्वरूप मैंने इसका एक
समाजीवनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करी का प्रयास किया।

यह शोध ग्रंथ है: काव्यों के तन्तर्गत सम्पन्न
हुआ है तथा शोध कार्य की प्रकृति वैज्ञानिक प्रक्रिया पर पूर्णतया आधा-
रित है। सर्वप्रथम विषय प्रवेश दिया है, तदनन्तर प्रथम काव्य में संस्कृत
काव्य परम्परा में संदेश काव्य का इतिहास प्रस्तुत है। अन्य काव्यों
में संदेश काव्य के परिवार में संदेश काव्यों की उत्पत्ति स्वरूप विकास एवं
विलस विधान इत्यादि का विवेचन करते हुए, कोलीय संस्कृत संदेश काव्यों
का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया है। तत्पश्चात् इस काव्य के रचयिता
कवि उदयक के जीवन और उनकी कृतियों पर प्रकाश डाली है, कोकिल

संस्कृत काव्य के कथाधार तथा काव्य में वर्णित मार्ग निर्देश को भी प्रस्तुत किया है। साहित्यिक धर्म के अन्तर्गत काव्यात्मक सौन्दर्य बोधक रस, अलंकार, इन्द्र, भाषा, शैली, सूक्ति संग्रह, प्रकृति चित्रण इत्यादि का विवेचन करने के पश्चात् कोकिल संस्कृत काव्य का ऐतिहासिक एवं राज-नीतिक, भाषाशास्त्रीय, धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक, साहित्यिक तथा कलात्मक आदि विविध दृष्टियाँ से विवेचन किया है।

इन कृतियों के अतिरिक्त एक अन्य कृत्याय उपसंहार भी है जिसमें कोकिल संस्कृत काव्यपर मेघदूत का क्या प्रभाव पड़ा है, उस पर अति संक्षिप्त प्रकाश डालते हुए तथा कवि उदयचन्द्र एवं उनकी प्रस्तुत काव्य कृति के महत्त्व को प्रस्तुत करते हुए, इस ग्रंथ की समाप्ति को है। शोध प्रबन्ध के सभी कृत्यायों के अन्त में एक परिशिष्ट भी पूर्ण रूप से निबद्ध किया गया है जिसमें एक सहायक ग्रंथ सूची भी दी गई है, जिसके अन्तर्गत प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के लेखन कार्य में जिन जिन पुस्तकों को सहायता ली गई है, उनका निर्देश है।

इस शोध प्रबन्ध के लेखनकार्य में जिन्होंने मुझे सहायता दिया है, उन सबों के प्रति मैं आपका प्रकट करता हूँ।

सर्वप्रथम मैं अपने पूजनीय गुरु एवं निर्देशक डा० एमनाथ पाण्डेय जी० के प्रति आपका कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिन्होंने प्रस्तुत ग्रंथ के शोध कार्य में मुझे पूर्णतया मार्ग दर्शन प्रदान किया है।

संस्कृत विभाग के अध्यक्ष प्रो० रामचंद्र विपाठी

जी के प्रति भी उदार हृदय से आभार प्रदर्शन करती हूँ, जिनकी प्रेरणा एवं उत्प्रेरणा से ही इस शोध ग्रंथ के विषय निर्धारण में पूर्ण सहयोग पाया है।

संस्कृत विभाग के प्रबन्धता डा० एच० आर० तर्मा जी के प्रति भी मैं कर्तबगार हूँ, जिन्होंने इस शोध प्रबन्ध लेखन कार्य के पूर्व ही मुझे शोध प्रक्रिया की प्रणालियाँ एवं नवीन प्रक्रियाओं के अध्ययन की रीति प्रदान की तथा पूर्ण सहयोग दिया। तदर्थ उनके प्रति भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ।

अन्त में, उन सभी विद्वानों को धन्यवाद देती हूँ, जिनकी कृतियों से मुझे शोध अध्ययन में पूर्ण सहायता प्राप्त हुई है।

सुधा गर्ग
(सुधा गर्ग)

विनयानुसंगिका

विनय प्रवेश

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय

११ - २१

संस्कृत काव्य परम्परा में गीति-काव्य

१- सङ्गकाव्य : गीतिकाव्य

२- सदाण, प्रकार, स्वरूप, भेद, उद्भव एवं विकास

द्वितीय अध्याय

२२ - ३४

गीतिकाव्य के परिवार में संक्षिप्त काव्यों का

साहित्यिक स्वरूप

१- गीतिकाव्य : संक्षिप्त काव्य

२- संक्षिप्त काव्य : द्रुत काव्य

३- पद्य पद्यी तथा अन्य अनेक छंद पदार्थों का द्रुत कार्य में उपयोग

४- स्वरूप एवं विकास

५- संक्षिप्त काव्य का शिल्प विधान

तृतीय अध्याय

३५ - ६२

संस्कृत सम्देश काव्य परम्परा में केरलीय संस्कृत

संदेश काव्यों का संक्षिप्त इतिहास

- १- कवि उदण्ड का जीवन परिचय
- २- प्राचीन एवं समकालीन कवि
- ३- जन्म काल
- ४- कृतियाँ

चतुर्थ अध्याय

६३ - ८२

- १- कौकिल संदेश काव्य का आधार (पूर्व भाग एवं उत्तर भाग)
- २- काव्य में वर्णित मार्ग का निर्देश

पंचम अध्याय

८३ - १६७

साहित्यिक संज्ञा

- १- रस निष्पत्ति
- २- भाषा अभिव्यक्ति
- ३- काव्य रचना शैली
- ४- वर्णकारिक प्रयोग
- ५- शब्द योजना
- ६- लोकोक्तियों का प्रयोग
- ७- प्रकृति चित्रण

बौद्ध कथाय

१६८ - १६९

काव्य का विविध दृष्टियों का विवेचन

- १- ऐतिहासिक एवं राजनीतिक २- भौगोलिक ३- धार्मिक
४- सामाजिक एवं ५- सांस्कृतिक ६- साहित्यिक ७- कलात्मक

उपसंहार

१६६ - २०४

- १- कौकिल संदेश काव्य पर मेघदूत का प्रभाव
२- कवि उदयक एवं उनकी काव्य कृति का स्थान

परिशिष्ट

२०६ - २१३

सहायक ग्रंथ सूची

- १- संस्कृत ग्रंथ सूची
२- हिन्दी ग्रंथ सूची
३- अंग्रेजी ग्रंथ सूची

संकेत सूची

| | |
|----------------|---|
| वाचार्य | रामकृष्ण वाचार्य - संस्कृत के संदेश काव्य |
| उपाध्याय | बलदेव उपाध्याय - संस्कृत साहित्य का इतिहास |
| क० जा० | कस्तूरक जातिक |
| कौ० सं० | कौकिल संदेश - महाकवि उदय |
| म० मा० | मल्लिका भारत - उदय शास्त्री |
| वा० रा० | वाल्मीकि रामायण |
| सा० द० | साहित्य दर्पण - विश्वनाथ |
| डी०के० एस० एस० | कन्दोव्यूशन वाफ केला टू संस्कृत सिटीयर, डा० के० कृष्ण राजा |
| एम०सी० एस० एस० | हिस्ट्री वाफ बलाधिकत संस्कृत सिटीयर (एम० कृष्णामाचारियर) |
| के० एस० डी० | केल साहित्य परिणाम , उत्तर, एस० परमेश्वर वय्यर |

विषय- प्रवेश

भारतवर्ष के सुदूर दक्षिण पश्चिमो प्रदेश में स्थित केरल प्रान्त की संस्कृत काव्य परम्परा के विभिन्न प्रोताँ में उदण्ड कवि ने 'कीर्ति चन्दन' नामक एक काव्य का प्रणयन किया है जिसे गीतिकाव्य की कीर्ति में उत्कृष्ट काव्य के रूप में परिगणित किया गया है। ग्रंथ का मूलधार कल्पित है, तथा महाकवि कालिदास के मण्डूत पर पूर्ण आधारित है। कवि कालिदास का यह सण्ड काव्य ऐदल काव्य तथा दूत काव्य के रूप में ही चिह्नित हुआ है। इसी परंपरा का अनुकरण कवि उदण्ड ने अपने प्रस्तुत काव्य में किया है। यह ऐदल काव्य पूर्णतया कल्पना पर आधारित है। एवं वैयक्तिक अभिव्यक्तियों का एक विशेष निबण प्रस्तुत करता है।

संस्कृत काव्य की समानुति एवं सौन्दर्या-सुति इस काव्य में कवि की वैयक्तिक प्रतिभा के फलस्वरूप अभिव्यक्त हुई है। अभिव्यक्ति के विभिन्न प्रकारों के माध्यम से कवि उदण्ड ने दक्षिण भारत में स्थित तमिलनाडु एवं केरल प्रान्त के विशिष्ट नगर की प्राकृतिक समणीयता की काव्य में यत्र तत्र चिह्नित किया है।

उदण्ड शास्त्री ने गीति काव्य की शास्त्रीय परम्परा का अतिक्रमण तो नहीं किया तथा गीतिकाव्य की शास्त्रीय परम्परा में नूतन कल्पना का समावेश तो नहीं किया, जत्यादि दृष्टिकोण से इस काव्य का मैं समालोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत ऐदल काव्य के इतिवृत्त एवं साहित्यिक विशेषताओं को विवक्षित करने से पूर्व सर्वप्रथम संस्कृत काव्य की अधिष्ठित परम्परा में नीतिकाव्य का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया है, क्योंकि नीति काव्य के परिवार में ही ऐदल काव्यों का उद्भव एवं विकास हुआ है। यह विकास किस प्रकार हुआ एवं किस प्रकार यह काव्य ऐदल काव्यों के रूप में प्रस्तुतित हुए ? अतएव इसके विस्तृत इतिहास को ज्ञात करने के लिए नीति काव्य का लक्षण स्वरूप, उद्भव एवं विकास आदि का निर्देश करना आवश्यक है।

प्रथम अध्याय

संस्कृत काव्य परम्परा में नीति-काव्य

१- सण्ड काव्य : नीतिकाव्य

२- लक्षणा , प्रकार , स्वरूप, भेद, उद्भव
स्व विकास

संस्कृत काव्य परंपरा में गीतिकाव्य

सौंकि युग में गीतिकाव्य का तत्त्वोन्मेष सर्वप्रथम वाल्मीकि कृत रामायण से माना जा सकता है। तमसा नदी के सुरम्य तट पर भ्रमण करते हुए व्याघ्र के बाण से वाहत नर-श्री के लिए विलाप करने वाली श्रौंजी के कर्ण स्वर को सुनकर कस्मात् ही आदि कवि वाल्मीकि के मुख से प्रस्फुटित कर्ण हृदयीद्गार ही कर्ण रस के रूप में प्रवाहित होकर गीतिकाव्य की उत्पत्ति के प्रेरणा-स्रोत बने।

क्तः महर्षिं वाल्मीकि द्वारा निर्दिष्ट परंपरा को आधार मानते हुए विद्वानों ने काव्य के विभिन्न रूपों की किस-सित परम्परा प्रतिष्ठित की। और विभिन्न काव्य भेदों का निर्धारण किया।

सण्डकाव्य : गीतिकाव्य

संस्कृत काव्यशास्त्रीय परम्परानुसार- जिसमें महाकाव्य के सभी गुण जथा लक्षण नहीं पाये जाते हैं उन्हें सण्डकाव्य कहते हैं। परिणामतः यह वाकार प्रकार में भी महाकाव्य से बहुत

१- मा निजाद प्रतिष्ठार्त्त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।

यत् श्रौं मिथुना देकमवधीः काम मोहितम् ॥

- वा० रा० २।१५

२- सण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारं च ।

यथा- मेघदूतादिः (सा० ५० ६।३२६)

छोटा होता है। यह महाकाव्य का एक सण्ड ही होता है, क्योंकि इसमें सम्पूर्ण जीवन वृत्तान्त न होकर जीवन के किसी एक ही पक्ष जैसे- प्रेम, धर्म तथा नीति इत्यादि की ही व्याख्या रहती है। सण्ड काव्य शृंगारिक हो, धार्मिक हो अथवा नैतिक - माधुर्य, लासित्य एवं संगीतात्मकता का पुट उसमें सर्वत्र विद्यमान रहे और भेक्ता के उत्कर्ष में उसका कथासूत्र केवल अन्तःसूत ही होकर प्रतिष्ठित हो जाए तो वही प्रबन्ध गीति का रूप धारण कर लेता है। यह देखा गया है कि सण्डकाव्यों का कथानक पूर्णतया कात्मनिक होता है।

प्रबन्ध गीति के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में गीति के दो अन्य प्रकार भी दृष्टिगोचर होते हैं :

- १- निबन्धात्मक तथा
- २- मुक्तक ।

१- निबन्धात्मक

इन काव्यों में सर्गबद्धता होती है एवं प्रत्येक सर्ग में विषय की एक वाक्यता रहती है। प्रत्येक सर्ग का पद्य समुदाय एक लघु निबन्ध के रूप में माना जाता है। उदाहरण स्वरूप- कौसलहार, पटकपर्ण इत्यादि काव्य ।

२- मुक्तक

यह काव्य स्वर्य में पूर्ण अर्थ व्यक्त करने वाला एवं समत्कारक माना गया है।

१- मुक्तकं श्लोकं स्वैकश्चमत्कारदामः सताम् । (अग्निपुराण काव्यानुशासन

पंथों के पारस्परिक पूर्वापर क्रम से मुक्त होकर स्वतन्त्र रूप से वास्वाय होता है। प्रत्येक पंथ स्वयं वर्णामिव्यक्ति में समर्थ होता है। मुक्तक काव्य के सकोष्ठ एवं सुन्दर उदाहरण भर्तृहरि एवं जयहर के शतक हैं।

स्वरूप

वाधुनिक काल में 'गीति' शब्द का प्रयोग वीथी के 'लिटि' शब्द के अर्थ में हो रहा है। 'लिटि' शब्द ज्ञानी शब्द 'लायर' से बना है। 'लायर' एक प्रकार का बांसुरीवत् वाय यन्त्र था। इस वाय यन्त्र पर गाये जाने वाले 'गीत' ही 'लिटि' कहलाये गये।

संस्कृतानार्यो ने काव्य, गीत तथा गीति में विशेष अन्तर नहीं माना है।

शब्दकल्पदुर्गाश में भी गीति का अर्थ गान ही दिया है।^१ नाट्यशास्त्र में भी गीति शब्द एक विशेष प्रकार के गान के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।^२

सामान्य रूप से 'गीति' शब्द का अर्थ 'गीत' अथवा गान ही समझा जाता है, विशेषतः गीति का अर्थ है- जिसमें यति, गति, तथा तय का पूर्णरूपेण ध्यान रखा जाये एवं

१- गीति , स्त्री० (गंगाने + धित्)

- शब्दकल्पदुर्गाश पृ० ३३२

२- नाट्यशास्त्र २६। ७, ७६

गायन, वादन और साज सँगाए की प्रधानता हो, क्योंकि गीत हृन्दीबद्ध स्वर सय-सात में बद्ध होने के कारण रागमय हो जाते हैं और हृदय की सीधे और निर्बाध रूप में प्रभावित करते हैं।

यही कारण है कि प्रायः गीतिकाव्य कोमल तथा मधुर भावों को लेकर सरस स्वर सरस भाषा में रचे गये हैं। अतः मधुर सुकुमार भावनाओं की अभिव्यक्ति ही गीति है।

साधारण रूप से यह कहा जाता है कि कवि की व्यक्तिगत राग, द्वेष, वानन्द, वेदना, कामना तथा संयोग-वियोग इत्यादि तत्त्व उन्मुख होकर स्वर्ण के माध्यम से काव्य रूप में प्रकाशित होने पर ही गीतिकाव्य की उत्पत्ति होती है।

संक्षेप में गीतिकाव्य की वात्सा है सान्द्र अनुभूति, तथा कलेवर सहज अभिव्यक्ति। गेय हृन्द् उसका उपयुक्त परिधान है और नाद सौन्दर्य प्रसाधन।

संस्कृत के काव्यशास्त्रियों ने गीतिकाव्य की कोई परिभाषा निश्चित नहीं की थी। आधुनिक युग में संस्कृत साहित्य की इस विधा को लेकर शोध करने वाले मनीषियों ने इसे परिभाषित करने का प्रयास किया है। यथा-

‘गीणवस्तु भवेद् गीतिर्भावाभिव्यक्तिरिति ।’

लघुकलेवरा गेया संभावरसाधया ॥ १

गीति के रूप

विषयाभिव्यक्ति की दृष्टि से गीतिकाव्य के दो रूप माने जा सकते हैं :

१- आत्माभिव्यञ्जनात्मक रूप तथा

२- बाह्यविषयात्मक रूप

आत्माभिव्यञ्जनात्मक रूप में कवि हृदय की वेदनामयी अनुभूतियों का वर्णन होता है, और जब कवि आत्माभिव्यञ्जनात्मक रूप के लिए बाह्य विषय का आधार स्वीकार करता है, तब बाह्य विषय की प्रधानता के कारण उसकी अभिव्यक्ति के रूप को बाह्यविषयात्मक कहते हैं। दोनों प्रकार की अभिव्यक्तियों के मूल तत्त्व एक होते हैं हुए भी उनके आकार-प्रकार एवं सीमाओं में अन्तर ही जाता है।

आत्माभिव्यञ्जनात्मक रूप को गीतिकाव्य तथा बाह्यविषयात्मक रूप को प्रबन्ध काव्य कहते हैं।

गीतिकाव्य के दोनों ही रूप मौर्य एवं ताकशक होते हैं।

गीतिकाव्य के मूल तत्त्व

१- भावमयता

गीति की आत्मा भावातिरेक ही है, क्योंकि

जब किसी भी कोमल भाव की अनुभूति पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है तो मानव के अचेतन मन में एकत्रित भावनायें भावावेश की अवस्था में गीत बन कर स्वतः ही हृदय से फूट निकलती हैं, तब कवि अपनी रागात्मक अनुभूति तथा कल्पना से विषय कथवा वस्तु को भावात्मक बना देता है। इन कार्पनिक चित्रों में जो भाव झूट होते हैं, वे वैयक्तिक भावनाओं से ही उद्भासित होते हैं। इन चित्रों में अभिव्यक्ति के विविध रूप हो जाते हैं।

विभिन्न अन्तर्दर्शनों एवं मनोवृत्तियों के फलस्वरूप गीतिकाव्य में मौलिक उद्भावनाओं की सम्भावना है, क्योंकि एक ही घटना की प्रतिक्रिया विभिन्न व्यक्तियों पर विभिन्न प्रकार से हुआ करती है, यथा - बसंत ऋतु किसी में वासना , किसी में करुणा , किसी में उत्फुल्लता एवं किसी में हतोत्साह की भावनारें उत्पन्न कर सकती है। अतः अनुभूति के अनुसार एक ही वस्तु से विभिन्न मानसिक प्रतिक्रियाएँ हुआ करती हैं।

२- भावान्विति

गीति का केन्द्र बिन्दु यही मूल भाव होता है जिसका विश्लेषण कवि गीति के कलेवर में करता है। कथा कथवा विषय वस्तु का आधार अति अल्प होने के कारण गीति में अभिव्यक्त अनुभूति एक ही मूल भाव से अनुप्राणित रहती है। एक ही भावानुभूति से समन्वित होने के कारण गीति में पूर्णता एवं संवेष्टाका गुण स्वयं ही समाविष्ट हो जाता है। संस्कृत काव्यकारों ने काम में भावान्विति पर बल दिया है। किसी भी पथ में वे एक से अधिक रस की प्रमुक्ता स्वीकार नहीं करते

अपि अन्य रसों का समावेश मुख्य रस के साथ तैग रूप में ही हो सकता है।

३- संक्षिप्तता

यह "गीति" का आकारिकगुण माना गया है। इसके आकार का स्वरूप भावना पर निर्भर रहता है। अनुभूति की आवेशपूर्ण तथा तीव्रतम स्थिति बहुत देर तक नहीं रह सकती। संक्षिप्तता के कारण गीति काव्य की अस्पष्टता नष्ट नहीं होती। भावनाओं को समाहित रखने के लिए भी संक्षिप्तता आवश्यक है। कभी कभी भावना का आवेश इतना अधिक क्षणिक होता है कि कवि एक ही पद्य में और कभी कभी वह कई पद्यों में उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति कर पाता है।

४- सहज अन्तःप्रेरणा

यह गीतिकाव्य का स्वाभाविक एवं विकसित रूप है। क्योंकि इसमें विषय वस्तु का आधार तो नाम मात्र का हो होता है, कविता मात्र ही अन्तःप्रेरित होती है।

५- गेयता

गेयता गीतिकाव्य की अनिवार्य विशेषता है। क्योंकि इसमें काव्य की अपेक्षा संगीत की हीमात्रा अधिक होती है, क्योंकि गीति काव्य का उद्देश्य परम आनन्द की प्राप्ति ही है। गेय हृन्दों के परिधान में गीतिकाव्य का सौन्दर्य विकसित हो उठता है। हृन्दों की

सयात्मक गेयता ही गीतिकाव्य का प्रमुख तत्त्व है। संगीत की धारा प्रवाहित करने वाले मँदाडान्ता, मातिनी, शिखरिणी इत्यादि वृन्द ही प्रयुक्त होते हैं।

६- चित्रात्मकता

इसका सबसे बड़ा वाधार प्रकृति है, कवि भाव चिह्न के लिए इसका वाग्रयतेता है। गीतिकाव्य के चित्रों में प्रकृति नेत्रों से अधिक हृदय की दृष्टि से अधिक अनुभूति प्राप्त करती है। क्योंकि प्रकृति का रागात्मक सम्बन्ध तो कवि हृदय के साथ ही होता है। प्रकृति चित्रण की विधाओं में गीति काव्य के वृत्तगत वातम्बन की झीड़ कर पृष्ठभूमि उद्दीप्त, प्रतीकात्मक मानवीकरण आदि रूपों को स्वीकार किया जाता है। प्रकृति और मानव के स्फात्मक रूप का हृदयग्राही चित्रण होता है।

७- सौन्दर्य और अभिव्यक्ति के रूप में

गीति काव्य में मानव और प्रकृति का हृदयग्राही चित्रण होता है। गीति काव्य में जहाँ, स्पर्श, चुम्बन, वार्त्तिन आदि स्थूल शृंगारबोधक शब्द आते भी हैं, तो वे वर्णन चातुरी नेपुण्य के कारण सूक्ष्म एवं मर्यादित हो जाते हैं। उनमें कामुकता नहीं रहती वरिष्ठ सौन्दर्यानुभूति की तीव्रता ही जाती है। इन काव्यों में रमणी-सौन्दर्य का स्निग्ध एवं प्रहुर मात्रा में चित्रण उपलब्ध है। रमणी के बाह्य सौन्दर्य के साथ ही वृत्तः सौन्दर्य का भी चारु चित्रण दृष्टिगोचर होता है।

गीति काव्य में अभिव्यक्ता सौन्दर्य के सभी अवयवों के माध्यम से मानव सौन्दर्य का चित्रण किया जाता है। वे हैं :

शब्द सौन्दर्य तथा नाद सौन्दर्य इत्यादि ।

भाषा शैली

गीतिकाव्य का कोमल कलेवर भाषा के बोधित वाहम्बर की सहन करने में असमर्थ होता है। गीति में भावना का उमड़ता हुआ प्रवाह रहता है और यही उसकी प्रमुख विशेषता है। कम से कम शब्दों में भाव की पूर्णतया अभिव्यक्ति कर हुक्म की रस स्थापित कर देना गीति की प्रमुख विशेषता है। विप्रोक्तता की प्रधानता होने के कारण इनकी रचना माधुर्य एवं प्रसादगुणों से युक्त वैदर्भी शैली में ही होती है।

विकास

संस्कृत साहित्य में गीति परम्परा का इतिहास उतना ही प्राचीन है, जितना कि स्वयं संस्कृत साहित्य ।

गीति काव्य का उद्गम संस्कृत का प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद से ही है। इसमें उषा के प्रति की गई स्तुतियों में गीति की प्रथम कसक दृष्टिगोचर होती है। इसके अतिरिक्त उषस्, पर्जन्य, विष्णु, वरुण, सविता, अदिति, नदी, मरुत् आदि देवों की अनेकानेक सूक्तों में की गई स्तुति तथा सरम्तपाणि, यम- यमो एवं पुरुखा उर्वशी इत्यादि संवाद सूक्तों में जिस भाव- विह्वलता से वर्णन किया गया है, वही निश्चित रूप से गीतिकाव्य के बीज हैं।

यजुर्वेद काल में संगीत तत्त्व की विशिष्ट उन्नति हुई। यजुः संहिता में वेद गायकों का भी उल्लेख मिलता है।^१

सामवेद संहिता तो पूर्णरूपेण गेयपद प्रधान है।
वैदिक ऋषि यज्ञादि विधानों में वैदिक ऋषियों की गा गा कर अभिव्यक्त
किया करते थे ।

^१ ब्राह्मणों तथा ^२ उपनिषदों में भी गीतिकाव्य
के बीज विद्यमान हैं। सुभाषित ग्रंथों में पाणिनि के नाम से उद्धृत गीति
पद्य भी गीति काव्यधारा के प्रवाह में हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न संग्रहों
में भी पाणिनि के नाम से लगभग १० श्लोक प्रायः गेय बन्दों में मिलते हैं।

बौद्ध धर्म- धेरियों की गाथाओं में भी गीति-
शैली दृष्टिगोचर होती है। बौद्धों का दुःस्माद जो धेरियों की गाथाओं
में बड़ी ही भावात्मकता के साथ अभिव्यक्त हुआ है, गीति काव्य में शान्त
रस की धारा को प्रवाहित करता है।

वैदिक साहित्योपरान्त लौकिक संस्कृत में
गीति तत्त्व का मधुर समावेश वाल्मीकि रामायण में दीप्त पड़ता है।
जैसा कि पहले कह चुके हैं। रामायण के प्रकृति चित्रण वयोध्या वर्णन,
मरुत विलाप , शरद् वर्णन स्वर्ग सीताहरण इत्यादि प्रसंग तथा महाभारत
के भी बने प्रसंग गीति शैली से जीत प्राप्त हैं। यथा- नलीपास्थान का ईस
दमयन्ती संवाद, दुर्योधन के प्रति युधिष्ठिर प्रेषित सदैववाक्य संवाद, कच-
देवयानी संवाद तथा पुरुखा- उर्वशी- संवाद इत्यादि ।

१- शतपथ ब्राह्मण १। २। ५। १६

२- कान्दोग्य उपनिषद् १। ८। ४

३- पीटर्सन - इन्डोइरान टु सुभाषितावली पृ० ५४। ५८ तथा
ग्रामस - कवीन्द्रवचन समुच्चय पृ० ५१। ५२

देखिए- संस्कृत गीतिकाव्य का विकास पृ० ११२

पुराणों के अनेकानेक प्रसंगों में गीतिमय शैली दोस फहती है। बालवार और बाढवार भक्तों के गीत, मराठी तथा हिन्दी कवियों के अनेक पद एवं कृष्ण भक्तों के सुमधुर गीत भी इसी परम्परा का विकसित रूप हैं।

गीति काव्य के विकास की दृष्टि से भागवत के विभिन्न गीत यथा- वैष्णु गीत, गोपी गीत, युगल गीत, प्रमरगीत, फिला गीत, भिन्नु गीत, स्त गीत, एवं भूमि गीत इत्यादि अन्यास गीत गीति परम्परा के अंग स्था हैं।

यद्यपि इन उपर्युक्त ग्रंथकारों का उद्देश्य गीति-काव्य सृजन नहीं था तथापि यह गीति तत्त्व इन काव्यों में कवि हृदय की सहज उपसब्धियाँ हैं।

लौकिक संस्कृत साहित्य में गीति काव्य का स्वतन्त्र एवं स्पष्ट स्वरूप मेघदूत में दिखायी देता है। शनैः शनैः इस युग में गीति काव्य पूर्ण विकास की प्राप्ति कर चुका है। इसका परिवर्धित रूप पटकर, भर्तृहरि एवं जमरुक के शतकों, चार फलाशिका, वार्या-सप्तशती, पवनदूत एवं गीति गोविन्द इत्यादि काव्यों में तन्मय हो चुका है।

इसकी विकसित परम्परा विशाल है। हमारे कालीन विषय के परिप्रेक्ष्य में इस तथ्य का विशद विवेचन अभीष्ट है कि - गीति काव्य के अन्तिम संदेश काव्यों का उद्भव एवं विकास किस प्रकार हुआ तथा किस प्रकार ये काव्य मेघदूत जैसे सजीव सरस और सफल संदेश काव्य के रूप में प्रस्तुत हुए।

द्वितीय अध्याय

गीतिकाव्य के परिसर में संदेश काव्यों

का

साहित्यिक स्वरूप

- १- गीतिकाव्य : संदेश काव्य
- २- संदेश काव्य : दूत काव्य
- ३- पशु पक्षी तथा अन्य जड़ चैतन्य पदार्थों का
दूत कार्य में उपयोग
- ४- स्वरूप एवं विकास
- ५- संदेश काव्य का शिल्प विधान

गीति काव्य : सदेश काव्य

किन्हीं कतिपय साम्यों के आधार पर सभी गीतिकाव्यों को सदेश काव्यों का पर्यायवाची कहना अवैज्ञानिकता का परिचायक है।

गीति एक व्यापक काव्य विधा है और सदेश काव्य उसका एक भाग। सदेश काव्य में वाचयन्त कल्पना का उत्कर्ष होते हुए भी संभाव्यता ही कवि की भावसान्द्रता से परिनिष्ठित सत्य के रूप में प्रतिष्ठित हुवा करती है।

सदेश काव्य विरही जन द्वारा वृत्त की सहायता से अपने प्रियजन तक प्रेषित सदेश कथानक से युक्त गीति काव्य है। अर्थात् वियोगात्मक गीति प्रबन्ध काव्य के रूप में ही सदेश काव्यों का उदय हुवा है।

सदेश काव्य : दूत काव्य

संस्कृत काव्य शास्त्र में सदेश काव्य अथवा दूत काव्य जैसी किसी विधा का उल्लेख नहीं है। परन्तु प्रबन्धात्मक गीति काव्य में जब विरही नायक अथवा नायिका द्वारा अपनी प्रियजन की किसी भी पाध्यम से अपना विरह जनित सदेश प्रेषित किया जाए, तो उसे सदेश काव्य अथवा दूत काव्य कहने लगते हैं। अर्थात् विरह काल में दूत के द्वारा नायक अथवा नायिका का अपनी प्रिया या प्रिय के पास प्रणय सदेश भेजना ही इन काव्यों का मुख्य विषय है। अतः ये काव्य

विरह की पृष्ठभूमि को लेकर लिखे गये हैं। गीतिकाव्य होने के कारण इन काव्यों में कोमल स्वर मधुर भावों का चित्रण सरस, सरस स्वर गेय शैली में किया जाता है।

यद्यपि संदेश काव्य अथवा दूत काव्य दोनों ही नाम वस्तुतः समानार्थक हैं, तथापि संदेश शब्द के अधिक मधुर, सार्थक स्वर प्रचलित होने के कारण इन काव्यों को संदेश काव्य कहना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है।

बंगाल तथा उत्तर भारत के अन्य प्रान्तों में रचित काव्यों के अन्त में दूत शब्द इसके विपरीत दक्षिण भारत के तथा लंका में रचित काव्यों के अन्त में संदेश शब्द पाया जाता है। अतः दोनों ही नाम समुचित हैं, क्योंकि नायक अथवा नायिका दूत के माध्यम से ही अपने प्रियजन के समीप ही प्रणय संदेश प्रेषित करते हैं।

प्राचीन ग्रंथों में संदेश का लक्षण भी यही दिया हुआ है :

“ सन्देशस्तु प्रेषितस्य स्ववार्ता प्रेषणं भवेत् । ” ३

दूत का अर्थ भी अमरकोश में नितान्त स्पष्ट रूप से दिया हुआ है : “ स्यात्सन्देशः हरी दूतः । ” ४

१- फनदूतम् - मनोदूतम् , फिदूतम् , हंसदूतम् और पान्यदूतम् इत्यादि

२- हंस संदेश, फि संदेश, मयूर संदेश, कोक संदेश, कोकिल संदेश इत्यादि

३- दक्षिणे- वाचार्य पृ० ६

४- १,

११

कतः दूत द्वारा सन्देश प्रेषण ही इन काव्यों की मुख्य वस्तु है। इसी आधार पर यह काव्य सन्देश काव्य अथवा दूत काव्य कहलाते हैं।

दूतकार्य में पशु, पक्षी तथा अन्य जड़ चेतन पदार्थों की उपयोगिता

साहित्य के रसशास्त्र में दूत का महत्त्वपूर्ण स्थान माना गया है। शृंगार रस में दूत के कार्य की बड़ी ही उपयोगिता है।

सन्देश काव्यों में दूत अथवा दूती, नायक अथवा नायिका के पास जाकर केवल विरहीजन की मानसिक स्थिति का ही ज्ञान नहीं कराते, अपितु उनके चित्त में प्रणय भाव जाग्रत करने का प्रयास करते हैं तथा परस्पर मिलने का सन्देश भी देते हैं। इसके अतिरिक्त दूत नायिका के पान को भंग कराने में भी सहायक सिद्ध होता है। रति भाव के परिपाक के लिए तथा शृंगार रस की मनोवैज्ञानिक दशा में सहायक होने के लिए दूत अपरिहार्य सा प्रतीत होता है। इसीलिए साहित्य में दूत की आवश्यकता माननी गई है।

साहित्य दर्पण में दूत तथा दूतियों के तीन भेद भी बताये गये हैं^१ काव्य साहित्य में विरह की पूर्वाग तथा मान की अवस्था में ही दूत-प्रेषण व्यापार दीक्ष पड़ता है, किन्तु सन्देश काव्यों

१- निःसृष्टार्थो मितार्थश्च तथा सन्देश हाटकः ।

कार्यप्रेष्य स्त्रिधा दूतो दूत्यस्वापि तथाविधाः ।

उभयोर्भावमुन्नीय स्वयं वहति चोत्तरम् ।

सुखितर्हं कुरुते कार्यं निःसृष्टार्थस्तु स स्मृतः ॥

मितार्थभाषाणि कार्यस्य सिद्धकारो मितार्थकः ।

यावदभाषितसन्देशहारः सन्देश- हाटकः ॥

में प्रवासजन्य विरह में ही दूत-प्रेषण का व्यापार दृष्टिगोचर होता है।

प्रवास में विरहीजनों की ग्यारह वस्तुयें वर्णित की गई हैं।^१

इन वस्तुओं में से उन्माद वस्तु का स्वल्प साहित्याचार्यों ने इस प्रकार बताया है :

“ विरहावस्था में जब विरहीजन उन्मत्त हो जाता है, तब उसे चेतन, अचेतन, मनुष्य और पशु-पक्षी का विवेक नहीं रहता। वह प्रत्येक जड़ एवं चेतन पदार्थों के समता संभ्रता, गाता, रोता तथा प्रताप करता रहता है। ऐसी अवस्था में विरहीजन का किसी को भी दूत बनाकर अपनी प्रिय के समीप भेजना अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होता। इसी कारण अधिकांश संदेश काव्यों में पशु पक्षी दूत बनाये गये हैं।

१- “ वीर्यसौष्ठवं तापः पाण्डुता कुस्तान्तरुचिः ।

जघृतिः स्याद् नासम्बस्तम्बयोन्याद मूर्च्छनाः ।

मृतिश्चेति भ्रमादेकादश स्मरदशा इह ॥

-(सा० द० ३।२०६)

२- “ चित्तसंमोहान्मादः कामलोकभयादिभिः ।

अस्थान हास रुदित नीप्रसफादिकृत् ॥

उन्मादश्चापरिच्छेदश्चेतनाचित्तनेष्वपि ॥

(- सा० द० ३।१६०-१८१)

३- यथा-ने वरदाचार्य काहरिणउदेश, लक्ष्मीदास का रुरु उदेश, विष्णुशर्मा का कौक उदेश, उदय कवि का मयूर उदेश, रुद्रन्याय पंथानन का प्रमर दूत एवं कौन्तारसिंहाचार्य का नरुद उदेश इत्यादि ।

किन्तु उत्पाद की पूर्ण अवस्था तो तब और भी अधिक फ़ट होती है, जब हम पवन, मेघ, चंद्र, फ़ाकि, तुलसी इत्यादि को भी दूत कार्य में नियुक्त पाते हैं।^१

इनके अतिरिक्त मन, मक्ति, शीत, गन्ध इत्यादि सूक्ष्म तथा भावात्मक फ़ार्थों को भी दूत कार्य में नियुक्त देखी है।^२

किसी-किसी काव्य में तो पौराणिक पात्रों यथा- कृष्णान उदय और कृष्ण इत्यादि को भी दूत कार्य में नियुक्त किया गया है।^३

इस प्रकार इन सभी संदेश काव्यों में विभिन्न पशु-पक्षी तथा अन्य जड़ और चेतन फ़ार्थों को दूत कार्य में नियुक्त किया गया है।

वास्तव में स्वयं कासिदास ने मेघ को दूत कल्पित कर एक नया मार्ग निर्दिष्ट कर दिया और यदि पार्वती काव्य-कारों ने कुछ अन्य दूतों की भी कल्पना की, तो कोई वाश्चर्य की बात नहीं है।

१- यथा- प्रीयो कवि, वादिवेद्र सूरि को पवनदूत, कृष्णनाथ न्याय पंचानन का वातदूत, विनयविजयगणि का हनुदूत तथा अन्य चन्द्रदूत, कृष्ण सार्वभौम का फ़ाकि दूत तथा नैमनाथ का तुलसीदूत इत्यादि ।

२- यथा- विष्णुदास का मनोदूत, अज्ञातजैन कवि का चेतोदूत, कासीप्रसाद का मक्ति दूत और हरिश्चंद्र सुन्दर गणि का शीतदूत, सुब्रतगण्य सूरि का बुद्धि संदेश, विग्रहकवि का नैमोदूत इत्यादि ।

३- यथा- कर्णोस्वामी का उदय संदेश, माध्वशर्मा का उदयदूत, नित्यानंद वाशु कवि का हनुमद्भक्त, नृसिंह स्व नारायण भट्ट कोला का

वस्तुतः संवेत काव्यकार उक्त प्रकार के दूत का काल्पनिक चयन करते समय उनकी व्यसमर्थता से परिचित जान पड़ते थे तभी तो उन्होंने अपने काव्य में किसी न किसी प्रकार अपने दूत के चुनाव का समर्थन किया है। इस सम्बन्ध में स्वयं कालिदास ने भण्डूत में कहा है-

‘कामार्ताः हि प्रकृति कृपणाश्चेतनाचेतनेषु ।’

(१-५)

वस्तुतः दूतकाव्यों की रचना प्रक्रिया में काल्पनिक अभिव्यक्ति का ही स्थान प्रमुख है। इसके कथानकों में यथार्थ-वाद की सम्भावना प्रायः नहीं होती। प्रवासजन्य अवस्था में शोक संतप्त हृदय की अभिव्यक्ति में व्यावहारिक क्रिया कलाप गौण ही पाते हैं वीर भावनाओं का प्रकृष्ट उत्कर्ष ही अधिक सम्भव होता है।

वास्तव में काम से पीड़ित प्राणी चेतन व अचेतन के माझ में न पड़कर व्यक्तता से विरही प्रियजन के संदेश की प्रतीक्षा करता है। इस दशा में चित्त बाध होकर रतना विस्तृत हो जात है कि सारी सृष्टि की अपने विचारों एवं भावों से जीत प्रीत देखता है। योग्य तथा अयोग्य का भेद तो वह जानते हुए भी नहीं जान पाता।

अतएव संवेत काव्यकारों ने अपने अचेतन दूतों से समर्थन्द्रिय पुरुष जैसा कल्प करवाया है।

इन सभी काव्यों का सौन्दर्य प्राकृतिक सौन्दर्य पूर्ण संवेतवाहकों- मेघ, पवन, ईश, कोकिल इत्यादि पर ही निर्भर है।

कतः उनकी दूत कार्य में नियुक्त करना साहित्यिक दृष्टि से अशुचित नहीं है।

संदेश काव्य का विकास

संदेश काव्य के प्रमुख स्तम्भ दूत- प्रेषण के दर्शन हमें ऋग्वेद जैसे प्राचीनतम साहित्य में ही उपलब्ध हो जाते हैं। जहाँ लोक स्थलों पर पशुओं के दूत कार्य का उल्लेख है :

‘ सरमा-पणि- संवाद ’ पशुओं द्वारा दौल्य-कर्म का प्रमाण है,^१ जिसमें सरमा (बृत्तिया) हन्त्र की दूती के रूप में पणि लोहों के समीप जाती है।

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में ही एक अन्य स्थल पर श्यामाश्व ऋषि का नृप रक्षणीति के पास उनकी पुत्री हेतु अपनी प्रणय संदेश की ‘ रात्रि ’ द्वारा भेजना भी दूत कर्म का प्रमाण है।^२

ऋग्वेद के बाद वाल्मीकि रामायण के विभिन्न कांडों के कई प्रसंगों में दूत द्वारा संदेश प्रेषण का उल्लेख मिलता है।

वाल्मीकि रामायण में हनुमान द्वारा सीता के प्रति राम की नामांकित बंधूठी के साथ संदेश लेकर जाना तथा अत्युपर में सीता का संदेश ब्रह्मर्षि सहित लेकर जाना संदेश काव्य के उद्भव का

१- वे० ऋग्वेद मण्डल १०, अनुवाक ८, सूक्त १७८

२- वे० ऋग्वेद मण्डल ५, सूक्त ६१ मंत्र सू० १७, १८, १९

प्रत्यक्ष उदाहरण है।^१ इसके अतिरिक्त पंचवटी में सीता के अपहरण हो जाने पर उनके वियोग में राम का वृक्षाई, नदियाँ, पर्वतों तथा पशु-पक्षियों से सीता के सम्बन्ध में प्रश्न पूछना भी दूत काव्यों के लिए पथ प्रदर्शन हो सकता है।^२

रामायणीपरान्त महाभारत काठ, हंस-वमयन्ती संवाद निश्चय ही संदेश काव्य का प्रेरणा स्रोत है।^३ हंस-वमयन्ती संवाद के अतिरिक्त एक स्थल पर राजा नल स्वयं ही वेषताओं के दूतवाहक रूप में वमयन्ती के पास जाना निश्चित रूप से संदेश काव्य का पथ प्रदर्शन है। इनके अतिरिक्त महाभारत के अनेक प्रसंगों में दूत द्वारा संदेश प्रेषण के वृत्तान्त मिलते हैं- यथा, कौरवों की सभा में श्रीकृष्ण की बुधिमिष्टि के दूत रूप में जाना इत्यादि ।

श्रीमद्भागवत में भी अनेक प्रसंगों में दूत प्रेषण का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। यथा-

रास-क्रीड़ा प्रसंग में कृष्ण के अन्तर्धान हो जाने पर विरहित हुए गौपियों का वाम, तुलसी इत्यादि वृक्षाई स्वयं लताओं से कृष्ण के सम्बन्ध में पूछना, तथा कृष्ण के दूत वाहक रूप में उद्यम के गोकुल पहुँकर नंद, यशोदा तथा गौपियों को कृष्ण का संदेश कहना तथा प्रत्युत्तर में गौपियों का विरह संदेश कृष्ण के पास पहुँचाना दूतकाव्यों का मार्ग प्रवर्तक है। इसके अतिरिक्त श्रीमद्भागवत

१- दे० वा० रामा० किर्निधा काठ, सर्ग ४४ , १-६, १२-१३

२- दे० वा० रामा० अरण्य कांड ६ सर्ग ६१-६४

३- दे० महाभारत , वन पर्व , नलीपात्थान प्रसंग ६३ वा अध्याय

४- दे० भागवत दशम स्कंध ३० वा अध्याय

५- दे० भागवत दशम स्कंध ४६- ४७ वा अध्याय

के अन्य प्रसंगों में जैसे- भ्रमरदूत प्रसंग तथा लक्ष्मिणी का विषम से एक ब्राह्मण को दूत रूप में नियुक्त करके श्रीकृष्ण के समीप भेजना, इत्यादि संदेश प्रेषण प्रसंग पाये जाते हैं।

उपयुक्त ग्रंथों के अतिरिक्त बौद्धों के जातक ग्रंथों में पद्धार्यों द्वारा सन्देश प्रेषण प्रसंग प्राप्त होते हैं। यथा- कस्तुरक जातक में एक सेठ द्वारा अपने तीते की दास की सीब के तिर भेजने का प्रसंग मिलता है।

कामविलाप जातक में शूली का दण्ड प्राप्त व्यक्ति कौवे द्वारा अपनी प्रिया के पास भेजने का प्रसंग है। एक अन्य जातक में कोशल नरेश का, दूसरे राजा के पास बिड़िया द्वारा पत्र प्रेषण प्रसंग मिलता है। इनके अतिरिक्त एक और अन्य जातक में पंचाल बण्डी राजकुमारी की सुन्दरता का वर्णन पद्धार्यों द्वारा मिथिला के राजा विदेह राज की फँसाने के प्रसंग में उपलब्ध है। इन बौद्ध जातकों के अतिरिक्त भारतीय लोक कथाओं में भी यशु- पद्धार्यों द्वारा दूत प्रेषण के उदाहरण पाये जाते हैं। जैसे- प्रेमी तथा प्रेमिकाओं के विरह जनित संदेश को उनके प्रियजन के समीप पहुँचाने का कार्य तीता, मैना, हंस, कौकिल इत्यादि किसी पक्षी द्वारा ही सम्पन्न किया गया है।

इन ग्रंथों के अतिरिक्त लोक साहित्य निधि

१- दे० क० जा० सं० १२७

२- दे० कामविलाप जातक सं० २६७

३- दे० कुंतनि जातक सं० ३४३

४- दे० महाउष्मण जातक सं० ५४६

गुणादय की वृहत्कथा में संदेश काव्य के अनेक बीज यत्र तत्र बिखरे दिसाई देते हैं, यही संदेश प्रेरणा प्रसंग जो बाज संदेश काव्य के रूप में हमारे सामने आये हैं, संभव है, परवर्ती कवियों की पशु-पक्षियों के दूत कार्य एवं पथ प्रदर्शन से ही संदेश काव्य लिखने की प्रेरणा मिली हो।

उपर्युक्त ग्रंथ संदेश काव्य के उपजीव्य माने गये हैं।

अतः प्राचीन संस्कृत साहित्य एवं लोक जीवन में यत्र तत्र प्रकीर्ण संदेश प्रसंग प्रबन्धमय संदेश काव्य के रूप में हमारे सामने आते हैं। उन सभी संदेश काव्यों में कालिदास का भेषदूत ही सर्वप्रथम तथा सर्वोत्कृष्ट काव्य है। कवि कालिदास की इस गीति कृति ने संस्कृत साहित्य को स्वनामना प्रभावित किया कि इसके अनुकरण पर समग्र देश तथा विदेश में परवर्ती कवियों ने अनेक संदेश काव्यों की सृष्टि की। इस प्रकार भेषदूत ने संदेश काव्य नामक नई परम्परा को जन्म दिया। भेष की दूत बनाने की कल्पना का आधार निश्चित रूप से कालिदास ने अपने पूर्व प्राचीन साहित्य से प्राप्त किया होगा।

वास्तव में कवि, कालिदास ने भेष की दूत कल्पित कर उपरवर्ती कवियों के लिए नूतन मार्ग निर्दिष्ट कर दिया। प्रेम तथा विरह जनित पृष्ठभूमि की आधार मानते हुए अनेक कवियों ने भेष के स्थान पर वायु, रस, कोकिल, मधुर इत्यादि चेतन-अचेतन वस्तुओं की दूत कार्य में नियुक्त किया। अतः इस वामरूपी के अनुकरण पर परवर्ती कवियों को संदेश काव्य लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई, तदनन्तर

अने : अने : संदेश अथवा दूतकाव्यों की लम्बी परम्परा विकसित होती गई । अनेक महान् कवियों यथा- घटकपर धौयी , भर्तृहरि, अमरक इत्यादि के काव्य पूर्ण विकसित रूप में उपलब्ध होते हैं।

प्रथम शताब्दी से लेकर १२ वीं शताब्दी तक संदेश काव्यों की प्रांढ़ परम्परा प्रवृत्ति हो गई । अनेक कवियों ने विशेषतः जैन कवियों ने धार्मिक भक्तिपरक एवं दार्शनिक संदेश काव्यों की रचना करनी प्रारम्भ कर दी । जैनार रस के वातावरण में चलने वाली काव्य परम्परा की अपनी प्रतिभा से नई दिशा की ओर मोड़ दिया ।

संदेश काव्यों का शिल्प- विधान

संस्कृत साहित्य में संदेश काव्य के शिल्प विधान का सूत्रपात सर्वप्रथम कालिदास ने किया है। कालिदास का का मेघदूत संस्कृत साहित्य का प्रथम दूत अथवा संदेश काव्य है जिसके अनुकरण पर पारवर्ती कवियों ने संदेश काव्यों की रचना प्रारम्भ कर दी । इन्होंने अपने दूत काव्य में काव्य का जैसा विभाजन तथा कथावस्तु का जैसा वार-तम्य रखा है, वह इतना मनोवैज्ञानिक तथा व्यवस्थित है कि पारवर्ती सभी दूत काव्यों में उसका पूर्णतया अनुकरण किया गया है।

कालिदास ने अपने मेघदूत काव्य को दो भागों में विभक्त किया है :

१- पूर्व भाग

२- उत्तर भाग

पूर्व भाग में सर्वप्रथम नायक अथवा नायिका की विरहो रूप में उपस्थित किया गया है, तदनन्तर दूत का दर्शन, उसका स्वागत, प्रार्थना एवं शक्ति का वर्णन करते हुए सदैव प्रेक्षण प्रार्थना के साथ साथ गन्तव्य स्थान तक के मार्ग का कवितापूर्ण एवं प्राकृतिक वर्णन करते हुए पूर्व भाग की समाप्ति हो जाती है। तदनन्तर उत्तर भाग में गन्तव्य नगर का वर्णन, प्रियजन के निवास स्थल का वर्णन, कहे उसकी विभिन्न केष्टावर्ग तथा विरहावस्था की संभावना के परचात् सदैव सुनाने की प्रार्थना की जाती है।

सदैव समाप्ति पर सदैववाक्य की सत्यता प्रमाणित करने के लिए प्रेमियों के अन्तर्गम जीवन की कोई गुप्त घटना भी अविज्ञान स्वरूप वर्णित की जाती है, अन्त में सदैववाक्य के प्रति शुभकामना प्रकट करते हुए काव्य की समाप्ति की जाती है।

उपर्युक्त विषयक मानुष्य ही परवर्ती कवियों जैसे सदैव काव्यों की रचना करने प्रारम्भ कर दी। सभी प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य पर मेघदूत का व्यापक प्रभाव पड़ा। तदनन्तर गुजराती, बंगला, कश्मीरी, मराठी, हिन्दी, तमिल एवं मलयालम इत्यादि अन्त्या न्य प्रान्तीय भाषाओं के अतिरिक्त इन विभिन्न प्रांतों में संस्कृत भाषा में भी जैसे सदैव काव्यों की रचना होने लगी।

तृतीय अध्याय

संस्कृत सन्देश काव्य परम्परा में केरलीय संस्कृत

संदेश काव्यों का संक्षिप्त

इतिहास

- १- कवि उदयन का जीवन परिचय
- २- प्राचीन एवं समकालीन कवि
- ३- जन्म काल
- ४- कृतियाँ

संस्कृत-संदेश-काव्य-परम्परा में केरलीय-संस्कृत-संदेश-काव्यों

का संक्षिप्त इतिहास

भारत के विभिन्न जनपदों में काश्मीर, बंगाल, कर्नाटक, बाल्मीकी, पाण्ड्य इत्यादि वृक्षों प्रवेश जिस प्रकार अपनी सांस्कृतिक काव्य परम्परा के लिए प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार भारत के सुदूर दक्षिण में अरब- महासागर के पश्चिमी तट से लिपटा हुआ भाग, जिसके पूर्वी पश्चिमी घाट पर सह्याद्रि पर्वत हैं, ऐसे केरल प्रान्त की ओर भी कवियों का ध्यान स्वतः ही आकर्षित होने लगा । यह प्रान्त प्रकृति देवी की सुरम्य झीला स्थली है। यहाँ विद्यमान सरोवर, सरिताएँ, झीलें, सागर, पर्वत, उपान, मंदिर, बागम इत्यादि रमणीय स्थलों की वेल कर कविगण आश्चर्यान्वित होते हुए पहली प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। बड़े बड़े साहित्यकारों एवं महाकाव्यकारों ने इस प्रदेश की सांस्कृतिक एवं साहित्यिक काव्य परम्परा को काव्य के माध्यम से सुरक्षित रखा है। केरल के प्राकृतिक सौन्दर्य से आकर्षित हुए, संस्कृत कवियों ने केरल का सुरम्य चित्रण अपनी अपनी कृतियों में नाना प्रकार से चित्रित किया है। यथा- पाणिनी ने अपनी अष्टाध्यायी में कहा है- 'तस्मिन् शब्द' केरल का कम्पद रूप ही केरल है।'

वाल्मीकि कृत रामायण में केरल का वर्णन एक स्थल पर मिलता है- 'जहाँ सीता जी के बन्धन के लिए सुग्रीव ने वानर सेना को भेजा था । वह स्थल केरल ही था ।''

भगवत पुराण में भी केरल का उल्लेख है

प्रकार मिलता है- वर्तमान मातावार कीचीन त्रावणकोर है। यह परिवार नदी से सिंचित था पहले इसको केरलम या केरनाहु = पर्वतमाता , इस प्रकार कहा जाता था ।

महाकवि कासिदास ने रघुवंश- महाकाव्य में, कवि धोयी ने पद्मनट्टम में, भवभूति ने मातली माधव में एवं कवि विल्हण ने विक्रमांक चरित में किया है। इसी प्रकार संस्कृत के अन्यत्र महा- कवियों ने केरल की प्राकृतिक रमणीयता का वर्णन करते हुए, यहाँ की विशिष्ट साहित्यिक एवं सांस्कृतिक काव्य परम्परा को प्रस्तुत किया है। क्योंकि प्राकृतिक दृष्टि से यह स्थान वैभवशाली है एवं साहित्यिक दृष्टि से भी इसका उत्कृष्ट स्थान है। इसी कारण यह प्रान्त प्राचीन काल से ही महान् विद्वानों के अध्ययन का प्रमुख केन्द्र तथा काव्य जागरण का महत्वपूर्ण स्थान माना जाता रहा है।

क्तः संस्कृत काव्यों की विशेषतः गीति काव्यों की विकसित परम्परा में कई कई गीति काव्यकारों का जन्म हुआ । यथा- कासिदास, विल्हण, धोयी, घटकपेर इत्यादि ने काव्य की उत्कृष्ट पृष्ठभूमि को सुदृढ़ किया । क्तः इन समस्त गीतिकाव्यकारों ने देश, देशान्तरों की प्राकृतिक रमणीयता का प्रतिपादन करते हुए केरल की विशिष्ट सांस्कृतिक परम्परा को प्रस्तुत किया है। वास्तव में संस्कृत काव्य साहित्य में केरल का अंशदान बहुत अधिक है।

१- भयोत्प्लुष्टविभूषाणां तेन केरलीभिर्तारं, क्लृप्तैश्च चमुरेणुरभूणं प्रतिविधीकृतः ॥ ४१५४)

२- या गीव प्रकृतिसुमगाजायते केरलीनां, केलिस्नानिकुणमलयैः पाण्डिमानंद धाना ॥ (१-१६)

३- अभ्यन्त गजैस्तस्य लीलया मलयुमाः ।

सार्धं केरलकान्तानां वर्णं कन्तमवलिमिः ॥ विक्रमांकचरित)

संस्कृत के द्रुत काव्य ही केरल में संदेश काव्य के रूप में सुलभित हुए। मेघदूत से प्रेरणा ग्रहण कर इसके अनुकरण पर ही इस प्रान्त में अनेक संदेशकाव्यों की रचना प्रारम्भ हो गई। इस प्रकार कासिदास ने एक नवीन काव्य परम्परा का सृजन किया। जो आगे चल कर पश्चिमी कवियों के लिए एक वापसी का स्थापित होकर संदेश काव्यों के क्षेत्र में मार्ग निर्देशन करता रहा।

कासिदास के मेघदूत काव्य ने भारतीय साहित्य पर अपना व्यापक प्रभाव डाला रहा है। इस प्रकार इस काव्य ने एक नई काव्य परम्परा ही भारतीय साहित्य में जला रखी है। न केवल संस्कृत साहित्य अपितु भारत की सभी प्रान्तीय भाषाओं का साहित्य इस संदेश काव्य का चिर कर्णी रहेगा।

भारत के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा दक्षिण भारत में भी मेघदूत के अनुकरण पर संस्कृत में तो अनेक संदेश काव्य लिखे ही गये हैं, इसके अतिरिक्त मलयाली भाषा में भी उन्मुनीसी सम्देश कोक संदेश तथा मयूर संदेशम् इत्यादि कई संदेश काव्य लिखे गये हैं। विशेषतः दक्षिण पश्चिमी प्रदेश में स्थित केरल प्रान्त ने संस्कृत संदेश काव्यों की परम्परा में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त किया है। इस प्रकार यहाँ संदेश काव्यों की एक प्रथा सी चल पड़ी है।

केरल में इन काव्यों की विकसित परम्परा का जन्म बारहवीं शताब्दी के पश्चात् हुआ जान पड़ता है। मलयाली भाषा के अतिरिक्त, संस्कृत भाषा में रचित कतिपय संस्कृत संदेश काव्यों का महत्वपूर्ण स्थान है।

मेघदूत के अनुकरण पर रचित केरलीय संस्कृत संदेश काव्यों में सर्वप्रथम लगभग १३ वीं शताब्दी में कवि लक्ष्मीदास ने शुक-संदेश नामक एक संस्कृत संदेश काव्य की रचना की। इसके पश्चात् इसी शताब्दी में पूर्ण सारस्वत नामक कवि ने ईश संदेश काव्य की रचना की। इस प्रकार केरल प्रान्त में संदेश काव्यों की विकसित परम्परा का जन्म ही गया। संस्कृत भाषा में रचित कतिपय संदेश काव्यों का केरल में महत्वपूर्ण स्थान है। प्रमुख संदेश काव्य निम्नलिखित हैं।

| कवि | काव्य | समय |
|------------------------------|--------------------------|----------------|
| वरुणारायणाचार्य | कोकिल संदेश शुक संदेश | १३७३ ई० |
| वैकुण्ठाथ | ईश संदेश | १४ वीं शताब्दी |
| उदय कवि | मयूर संदेश | १५ वीं .. |
| वासुदेव | भृंग संदेश | १५ वीं .. |
| उदयण | कोकिल संदेश | १५ वीं .. |
| नारायण नम्पूतिरि ब्राह्मण | सुभग संदेश | १५४१-४७ ई० |
| विष्णु ब्राह्मण | कोक-संदेश | १६ वीं शताब्दी |
| वासुदेव कवि | फकीर संदेश | १६ वीं शताब्दी |
| मातृदत्त | काम संदेश | १७४३ ई० |

| | | |
|---------------------|---------------|--------------|
| वीथर्णकवि | नीलकण्ठ संदेश | १७७४-१८३० ई० |
| पुलियन्मूर तैयकेषात | | |
| नम्पूतिरि | संघाति संदेश | वज्ञात |
| वज्ञात कवि | शृंग संदेश | वज्ञात |
| वज्ञात कवि | मारुत संदेश | वज्ञात |
| वज्ञात कवि | हंस संदेश | वज्ञात |

एक प्रकार केरल में रचित संस्कृत संदेश काव्यों की धारा प्रबल रूप से प्रवाहित होती रही है। इन संदेश काव्यकारों ने अपने अपने काव्यों में यहाँ की विशिष्ट सांस्कृतिक एवं साहित्यिक निधि को परिचरित करने का प्रयास किया है। यदि हम इन सभी संदेश काव्यों को एकत्रित कर लें तो फरकासीन केरल प्रान्त का इतिहास, वहाँ की संस्कृति एवं तत्त्व स्वरूप का पौरोहित्यिक ज्ञान प्राप्त करने में पर्याप्त सहायता मिल सकती है। इसीलिए इन संदेश काव्यों ने केरल प्रदेश में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त किया है।

अतः मासामार प्रान्त में लिखे गये संस्कृत-संदेश काव्यों में कौकिल संदेश एक महत्वपूर्ण संदेश काव्य है। तमिल कवि उदण्ड ने कासिदास के मेषयुत का सफल अनुकरण करते हुए ही इस काव्य की रचना की है।

इस उदण्ड कवि द्वारा रचित कौकिल संदेश-काव्य का वास्तविकतात्मक रूप से मूल्यांकन करना ही मेरे इस तथु शोध प्रबन्ध का लक्ष्य है। अतएव काव्यकार की इस कृति का वास्तविकतात्मक मूल्यांकन करने से पूर्व कवि उदण्ड का जीवन-परिचय, जन्म काल एवं अन्य रचनाएँ, इत्यादि पर संक्षिप्त प्रकाश डालना भी आवश्यक प्रतीत होता है।

जीवन-परिचय

संस्कृत के कतिपय काव्यकारों की भाँति कवि उदण्ड ने भी अपनी कृतियों में विशेषतः मल्लिका भारत प्रकरण की प्रस्तावना में, अपने जीवन का स्पष्ट स्केच दिया है। इसके आधार पर उनके जीवन का पूर्ण परिचय प्राप्त हो जाता है। य० मा० प्रकरण की प्रस्तावना से निम्नलिखित विषय ज्ञात होते हैं।

कवि उदण्ड का जन्म वसिष्ठा पर्व के तुण्डीर मण्डल में स्थित साटपुर ग्राम में (आधुनिक मद्रास प्रदेश के चिन्नपुर जिले) हुआ था । ये प्रतिष्ठित ब्राह्मणवंश के बाधूत कुल में उत्पन्न हुए थे । उनके पंशज बापस्तम्भ शास्त्र से सम्बन्धित महान् विद्वान् थे । उनके प्रपितामह का नाम गोकुलनाथ एवं पितामह का नाम श्रीकृष्ण था । इस प्रकरण के अंतिम श्लोक से विदित होता है कि उनकी माता का नाम रंगदेवी एवं पिता का नाम रंगनाथ था । रंगनाथ मठ के हरगुणनाथ

१- वसिष्ठ वसिष्ठापत्ये वयमानकाभाजीकृष्णनाताण्डवितकविशिशिष्ट
मण्डलेषु तुण्डीरेषु शीरुनदीतीरगितोपश्रयो साटपुरीनाम महान-
ग्रहारः तत्र च
तपश्चरणं सुचवत्सकलशास्त्रमुष्टिन्धयाः
स्वनुष्ठितमहाध्वराः श्रुतिपरायणाः श्रीत्रियाः ।
महामिजनशालिनी ववनवर्तिवाग्देवता
वसन्त्यतिपिस्तृतिदापितवासरा सुसुराः ॥

तत्र चामुण्यायणस्य, बापस्तम्भशास्त्राध्यायिनी, बाधूतकुलरूपस्तवस्य,
कवितावत्सलस्य, विष्णुपद्मोदवितकीर्त्तिरूपाध्याय गोकुलनाथ पौत्रस्य,
श्रीकृष्णसुनीर्मठरंगनाथस्य प्रियमन्वन हरगुणनाथपरम्पराय उदण्डकविनाम ।
४ किस ----- ताप्रबुद्धीहनगरमादीकृत ।

नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो बाद में उदण्ड नाम से प्रसिद्ध हुआ ।
 उदण्ड कवि का यह नाम विरह ही प्रतीत होता है। क्योंकि इस प्रकरण
 की भूमिका से ज्ञात होता है कि इनका जन्म का नाम हरगुप्ताथ था ।
 संभवतः उदण्ड नाम उस समय पड़ा जब उन्होंने कात्तिक के राजा मान-
 विक्रम की सभा में प्रवेश करते हुए एक श्लोक राजा की प्रशंसा में प्रस्तुत
 किया -

‘ उदण्डः परदण्डमैख भवपात्रासु जैस्तत्रियी
 हेतुः केतुरतीत्य सूर्यसरिणं नक्षत्रं निवार्यस्त्वया ।
 नो चेत् तत्तत्पटसम्पुटीदत्तसञ्ज्ञाद्वैतमुद्राङ्गवत्
 सारिण शशिदिम्बमेष्यति तुलां त्वत्प्रियसीनां मुलैः । ’ १

प्रस्तुत श्लोक को सुनते ही प्रसन्न होकर राजा
 ने श्लोक में प्रयुक्त ‘ उदण्ड ’ शब्द के आधार पर इनको ‘ उदण्ड ’ नामक
 उपाधि से अर्जित किया ।

कतिपय विद्वान् उपर्युक्त कथन को अस्वीकार
 करते हुए कहते हैं कि - राजा मानविक्रम के दरबार में प्रविष्ट होते
 ही उदण्ड कवि का परिचय दरबारी कवि चन्दासना रायणनम्पुतिरि ने
 इस प्रकार राजा से कराया -

प्रकीर्तकार्त्तवीर्यार्जुनैक रविधृतौ न्युबतसोमीदृशसम्-
 र्त्तमा रामौगढम्प्रशमनपटुवाग्नुभगम्भीरिम्भीः ।
 तुण्डीरक्षोणिभागात्त्वत्तु विगद्येऽदिण्डसूरि-
 रसौऽयं ते विक्रमस्मावर किमु न गतः प्रोत्रियः प्रौत्रदत्तम् । ’ २

वचन यह मसन उपस्थित होता है कि यदि इनको मानविक्रम ने ही 'उदण्ड' उपाधि से सुशोभित किया था तो शैलानन्द-पुत्रि ने 'उदण्डपुत्रि' कहकर इनका परिचय राजा से कैसे करा दिया ?

क्तः यहाँ भी समाधान के रूप में यह कहा जा सकता है कि 'उदण्डपुत्रि' का अर्थ उदण्ड नामक एक विद्वान् न मान कर महान् विद्वान् ही सम्मानना चाहिए। क्योंकि उदण्ड शब्द का अर्थ है महान् विद्वान्। क्तः सम्भव है कि उदण्ड की कवित्व प्रतिभा से प्रभावित होकर ही जयपुरिन मानविक्रम ने उनकी 'उदण्ड' इस प्रकार की उपाधि से विभूषित किया होगा।

उदण्ड के सम्मानार्थ कवि नत्तादीप्ति ने 'सुमन्त्रा-परिणय' नाटक में लिखा है- 'उदण्ड बीलप्रदेश में स्थित तबौर किले के कन्दरमानिक ग्राम का निवासी था। इनका पिता गिनाथ भी इसी ग्राम का निवासी एवं महान् विद्वान् था। शत्रुपुण्यप्राय-स्त्रिषन् नामक एक ब्रह्म ग्रंथ और परमेश्वरी तथा कौमुदी पर इनकी टीकाएँ पायी जाती हैं। क्तः यह भी सम्भव है कि 'कन्दरमानिकग्राम' में उदण्ड का जन्म हुआ हो और बाद में यह काँची के निकट लाटपुर ग्राम में निवास करने लगे हों।

किन्तु अन्य विद्वान् उपर्युक्त पत्र की तस्वीर करते हुए कहते हैं कि - 'उदण्डपंडिताभ्युज्जित' यह वाक्य शुंगारसंस्मरण में भी पाया जाता है, उसमें जिसका अर्थ उदण्ड पंडित निवास करते थे यह न मान कर श्रेष्ठ विद्वानों का निवास स्थल है, ऐसा माना

गया है।

कवि उदण्ड ने अपनी कौ० सं०^१ में प्रस्तुत
अग्रहार का वर्णन करते समय उसकी श्रेष्ठ ब्रासण विद्वानों से युक्त
कताया है एवं म० मा० प्रकरण में भी ऐसा ही उत्सव मिलता है।

वतः यह स्पष्ट ही है कि उदण्ड कवि का जन्म
साटपुर नामक ग्राम में हुआ था ।

साटपुर ब्रासणों का महान् अग्रहार सम्पन्न
जाता था । जहाँ पर बहुत से श्रेष्ठ वैदिक विद्वान् निवास करते थे ।
म० मा० की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि इन्हीं वरिष्ठ ब्रासणों से
उदण्ड ने शिक्षा ग्रहण की । विभिन्न शास्त्रों, एवं वैदिक विद्या में
प्रवीण होकर ही यश प्राप्ति की तब ही उदण्ड ने अपनी जन्मभूमि से
प्रस्थान किया । तदनन्तर दक्षिण भारत के विविध विद्या केन्द्रों में
गया- बान्ध, कर्णाटक, कर्लिंग, जोस इत्यादि में साहित्यिक जीवन
व्यतीत कर अन्त में कासिक के राजा अमरिन्धमानविक्रम (१४६७-१४७५
रखी०) के दरबार में प्रवेश किया । राज दरबार में जाकर इन्होंने
अपने सभी विरोधी कवियों को परास्त किया । इनकी वद्वितीय पारित्य
प्रतिभा से प्रभावित होकर राजा ने इनकी अपना दरबारी कवि नियुक्त
कर लिया ।

ऐसा माना जाता है कि उदण्ड ने अपने जीवन
का अधिकांश भाग कैस्तिय पावन धरती पर चारों तरफ भ्रमण करने में
व्यतीत किया । यहाँ के प्राकृतिक एवं साहित्यिक सौन्दर्य से आकृष्ट होने

बास बाहर से आये हुए विद्वानों में ये सर्वप्रथम विद्वान् था जिसे यहाँ काव्य सुकन हेतु उपयुक्त वातावरण पाया तथा देशीय संस्कृति की अपनी कृतियों में चित्रित किया।

केरल साहित्य चरितम्^१ से ज्ञात होता है कि उनके एक भाई भी था जो उन्हीं के साथ केरल आया था। कुछ विद्वानों की मृत्यु के उपरान्त कुछ बहुमूल्य पुस्तकें, जो उदण्ड के पास सुरक्षित रखी हुई थीं, उन पुस्तकों को उनके भाई ने पय्यूर भट्ट की उपहार में दे दी थी।

अनुमान किया जाता है कि उदण्ड ने केरल जाने के बाद ही कोचीन के वेन्मयंगलम् नगर में स्थित मारक्कर गृह की एक स्त्री के साथ विवाह किया था। अपनी कौ० सं० काव्य में भी मारक्कर गृह का उल्लेख करते समय, मारक्कर गृह में रहने वाली प्रस्तुत काव्य की नायिका की विभिन्न विशेषताओं को वर्णित किया है। सम्भवतया मारक्कर गृह की यही महाभाग्या की सं० की नायिका बनी ही रहीं उदण्ड ने स्वयं प्रस्तुत काव्य का नायक बन कर अपनी जन्मभूमि से दूत के द्वारा अपनी संदेश की अपनी प्रिया के समीप भेजा ही। क्योंकि उदय कवि ने मयूर संदेश काव्य में वेन्मयंगलम् नगर का वर्णन करते समय कहा है कि, "उदण्ड कवि इस नगर की एक स्त्री के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करता हुआ देखा जाता है।" कहा जाता है कि -

१- कौ० सं० की भूमिका पृ० ११

२- कौ० सं० २ - १२

३- कौ० सं० की भूमिका पृ० ११

४- मयूर संदेश १ - ८३

उदण्ड शास्त्री लगभग पच्चीस वर्ष की आयु में केरल गये थे। तत्पश्चात् अपने जीवन का शेष भाग यहीं पर व्यतीत किया। लेकिन उदण्ड के विषय में केरल में एक किवदन्ती प्रसिद्ध है- जमूरिन मानविक्रम की सभा में होने वाली बाल-विवाद प्रतियोगिता में जब उदण्ड शास्त्री काक्करीरि वामीदर भट्ट से पराजित हो गये तो उन्होंने केरल छोड़ दिया। केरल छोड़ने के बाद ये तमिल प्रदेश की किसी जेल में दंडित हुए, क्योंकि इसके प्रतिद्वन्दी कवि वामीदर भट्ट ने इसके विरुद्ध न्यायालय में यह गवाही दी कि - इस ग्राम के दो निवासियों से झका युद्ध हुआ है। यद्यपि वामीदर भट्ट इस प्रान्त की भाषा को नहीं जानता था तथापि उसने युद्ध-संवाद का शब्दशः स्पष्ट उच्चारण करके अपने उक्त कथन को सत्य प्रमाणित करके उदण्ड को जेल भिजवा दिया था।

इसी प्रकार की किवदन्ती संस्कृत के अन्ध कवियों में विशेषतः प्रसिद्ध कवि रसगंगाधर के विषय में भी प्रसिद्ध है।

कवि उदण्ड के जीवन के विषय में अन्ध कोई सत्य समाचार उपलब्ध नहीं होता अतः इनके सम्बन्धित प्रसिद्ध किवदन्तियों के आधार पर निश्चित हम से यह नहीं कह सकते कि यह परम्परागत कहानियाँ कितनी विश्वसनीय हैं।

उपर्युक्त विवेकन से यह स्पष्ट होता है कि उदण्ड के संरक्षक जमूरिन मानविक्रम स्वयं प्रकाण्ड पंडित, साहित्य कला प्रेमी एवं विद्वानों के महान् संरक्षक थे। उनके राज दरबार में असाधारण

१- की० सं० की भूमिका पृ० ११

२- सी० के० एस० स्त० पृ० ८०

विदवावासे १८ कवि एवं एक कवि सम्मिलित थे। इन सादे बठारह कवियों में प्रसिद्ध पद्मेश्वर वंश के बाठ भाई बाँर एक पुन, तिरुवण्णर और तिरुवण्णर के पाँच ब्राह्मण तथा कशीकपुर क्षेत्र की मत्तापिल्लि पट्टेरि, चेन्नस नारायण नम्पुतिरि, काक्कशेरि वामीदर मट्ट, उदण्ड कवि एवं पूनम नम्पुतिरि नामक कवि इत्यादि कवि लोग सम्मिलित थे।^१

पूनम नम्पुतिरि को कर्कवि इसलिए कहा जाता था क्योंकि उनको कविता मत्तयात्म और संस्कृतमिश्रित होती थी।

को० सं० का रचयिता इस कवि मण्डल का प्रमुख व्यक्ति था। इन सादे बठारह कवियों में से सर्वाधिक उदण्ड शास्त्री ने ही केरलीय साहित्य पर अमिट छाप अविलित की है।

अन्य संस्कृत कवियों के जन्मकाल की भाँति उदण्ड कवि का जन्म काल विवाद ग्रस्त विषय नहीं है, क्योंकि इनके निश्चित काल की ज्ञात करने के लिए अन्य समकालीन कवियों, विद्वानों एवं राजदरबारी कवियों का संनिपात उल्लेख करना यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है।

समकालीन कवि

१- पद्मेश्वर मट्ट

कैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि राजा मान-

१- सी० के० एस० स्त० पृ० ६३

विक्रम का राजदरबार प्रसिद्ध पय्यूर वंश के ६ विद्वानों द्वारा स्तुत था ।

इस वंश के वरिष्ठतम सदस्य का उत्तैत समकालीन कवियों ने अपनी कृतियों में ' कणि ' कथवा ' महर्षि ' इस नाम से उल्लिखित किया है।

कवि उदण्ड ने को० सं० में रणस्त में स्थित पय्यूर वंश के अग्रजविद्वत्प्रवर महर्षि के गृह का वर्णन अत्यधिक प्रशंसा के साथ किया गया है। इस काव्य के अतिरिक्त म० मा० प्रकरण में भी उनकी श्रेष्ठ वैदिक विद्वान् के रूप में उल्लिखित किया है।

उपरोक्त कथन से स्पष्ट होता है कि इन विद्वानों ने संस्कृत काव्य एवं मीमांसा दोनों ही साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

समकालीन कृतियों के आधार पर ज्ञात होता है कि वरिष्ठ महर्षि के पुत्र का नाम परमेश्वर है जो ' जैमिनीयसूत्रार्थ ' संग्रह ' का रचयिता माना गया है।

म० मा० प्रकरण में कवि उदण्ड ने उनकी ' मीमांसिक चक्रवर्ती ' ज्योतिष मीमांसा दर्शन का प्रसिद्ध सम्राट् इस प्रकार कहकर सम्मानित किया है।

उनके अतिरिक्त अपने एक मुक्तक में भी उदण्ड

१- को० सं० १ पृ० ७६, ८०, ८१

२- त्रैविधश्रीमहर्षिर्निरूपममहिमा यदिति जागृकः ।

३- कश्चित्तमप्येतामीमांसिकचक्रवर्तिना महर्षिपुत्रेण परमेश्वरेण ।

ने इस महर्षि के प्रति अत्यधिक सम्मान प्रदर्शित किया है।

उदण्ड के प्रतिद्वन्द्वी कवि दामोदर भट्ट ने भी अपने समकालीन पद्मपुर वंश के विद्वानों की अत्यधिक प्रशंसा की है।

समकालीन एक प्रसयाली कृति 'उण्णुनीति-संदेश' में भी पद्मपुर भट्ट का उल्लेख मिलता है। इन कृतियों में उपलब्ध सूक्तों से यह स्पष्ट होता है कि यह महर्षि विद्वान् राजा मानविक्रम जम्बरु का राजकवि था। अतः इन दोनों का समकालीन होना स्पष्ट हो है।

२- काव्यशैलि दामोदर भट्ट

यद्यपि उदण्ड की कृतियों में दामोदर भट्ट का उल्लेख नहीं मिलता, तथापि इन दोनों से सम्बन्धित अनेक कथायें उपलब्ध हैं। केवल में इनके जन्म से सम्बन्धित प्रसिद्ध किवदन्ती है- 'मानविक्रम

१- पद्मपुराण महर्षि, कवितामार्गं च कासिदासं त्वाम् ।

दाने च कल्पवृक्षा सर्वज्ञत्वे च चन्द्रसण्डधरम् ।

२- यस्मिन् प्रीणाति वाणी कृतसवितसद्वत्सकीर्तित्य भाजा सीता

वाताशनाधीश्वरविश्वशिरः कम्पसम्भाषितानाम् ।

भाजा मौचामधूतोपरिप्लवुवद्विष्वदानेनमाध्व-

प्रदातुः केवलमा वलतिसकमुनिस्साक्षिणीयादृश्या ॥

- को० सं० की भूमिका पृ० २०

३- उण्णुनीति संदेश २ पृ० १४

की सभा में प्रतिवर्ष सम्पन्न होनेवाली वाद विवाद प्रतियोगिता में सदैव उदण्ड कवि ही पुरस्कार जीतता था, तो राज दरबार में उनकी इस प्रकार की सफलता को देखकर नम्पूतिरि ब्राह्मणों में ईर्ष्या होने लगी। सीमाव्यवश इनके वंश की एक ब्राह्मणी गर्भवती थी उसने उदण्ड को पराजित करने वाले एक पुत्र की देवताओं से प्रार्थना की। उसकी एवं पण्डितों की प्रार्थनाओं तथा मन्त्र शक्ति की सहायता से उसके काकरशेरि दामोदर भट्ट नाम से विख्यात पुत्र हुआ। बारह वर्ष की वय अवस्था में ही उसने तालि मंदिर में सम्पन्न होने वाली वाद विवाद प्रतियोगिता में सम्पन्न होकर वीरक वीरक प्रस्तुत करके उदण्ड को पराजित कर दिया। इस प्रकार प्रतियोगिता की जीत कर अपनी महान् विद्वत्ता प्रदर्शित करके वीरक पुरस्कारों की जीत कर श्रेष्ठ विद्वान् के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। तत्काल राजा ने इसको अपना सभा कवि बनाया। यह उदण्ड का प्रतिद्वन्दी कवि माना जाता था जैसा कि पूर्व प्रसंग में उल्लिखित कर चुके हैं।

इनने संस्कृत में हनुमतीराधन तथा मत्स्यात्म में बहुमतिमानविक्रम नामक नाटकों की रचना की है।

इस प्रकार दामोदर कवि उदण्ड के समकालीन कवि सिद्ध होते हैं।

३- वेम्पास नारायण नम्पूतिरि

ऐसा माना जाता है कि यह वही मानविक्रम का राज दरबारी कवि था, जिसने उदण्ड शास्त्री का परिचय अपनी

१- स्व० श्री० स्व० स्त० पृ० २५१

(वाच्यार्थ पृ० ३१८)

संरक्षक से कराया था । क्योंकि हम पूर्व प्रसंग में (जीवन परिचय)
उल्लिखित कर चुके हैं।

इसको प्रसिद्ध तार्किक विवेचनात्मक कृति
‘ तंत्र समुच्चय ’ का रचयिता माना जाता है। इस कृति के आधार पर
इसका जन्म काल १४२० ई० माना जाता है। ग्रंथकार ने वन्त में ग्रंथ
का रचनाकार कलिवर्ष ४५२६ दिया है।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि यह उदण्ड
का परम प्रिय मित्र था । इन्होंने अपनी सहायोगी उदण्ड की अत्यधिक
सम्मान प्रदान किया, क्योंकि तंत्र समुच्चय में उदण्ड द्वारा दो श्लोक
प्रस्तुत किये हैं। इसका संकेत इस कृति के वक्त्र पटल में उल्लिखित संदर्भ
से मिलता है।

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यह कवि
भी उदण्ड शास्त्री का समकालीन ही सिद्ध होता है।

१- कत्येव त्विच्छन् नन्वनयोषष्पी धिर्स्थिषु यः

संभूतो भृगुवीतिहव्यमुनिमुहंभूति सवेदोऽन्वये ।

प्रादुर्यस्य जयन्तमगतपवेदं धाम नारायणः ।

सोऽयं तन्त्रमिदं व्यधाद्रुविधाबुद्धस्य तन्त्रार्णवात् ॥

२- संतर्पुतज्वलपटहान्तासत्तालो हमेरी -

रिण्णुगोष्ठमहमरुहोप्रणीता प्रणीताः ।

हक्काहुक्का विरतमुखकिर्मठाश्चामियान्तु

स्वायपीपास्तमिह मस्तिहामस्ति मस्तिः ।

- कथितकथितवृत्तात्मकरीर्ण सुगन्धम् -

(को० सं० की भूमिका पृ० २२ ३)

४- मुत्तप्पत्तिमट्टतिरि

इस कवि से सम्बन्धित एक पौराणिक कथा प्रचलित है कि एक बार वेन्नास नम्पुतिरि तथा ये कवि जमीरिन मान-विश्रम द्वारा दंडित किये गये थे। क्योंकि इन्होंने संरक्षक पर कुछ अप्रस-सात्क व्यंग्यपूर्ण श्लोकों को प्रस्तुत किया था। इनके अतिरिक्त इनके विषय में एक अन्य पौराणिक कथा भी प्रचलित है- मानविश्रम संरक्षक ने एक असत्य जनप्रवाद का वह प्रथम पुरस्कार वाद-विवाद प्रतियोगिता में विजयी होने पर ग्रहण करता था^१ फैलाने के आरोप में इनको दंडित किया था।

इनके द्वारा रचित किसी भी कृति का उत्सर्ग नहीं मिलता। मुत्तप्पत्तिमट्टतिरि के अतिरिक्त तिरुवेगपुर के अन्य पाँच ब्राह्मण विद्वानों द्वारा रचित किसी भी साहित्यिक कृति का उत्सर्ग नहीं मिलता। किन्तु मानविश्रम के राजदरबारी कवि होने के कारण यह उदण्ड के समकालीन ही सिद्ध होते हैं।

५- भ्राम नम्पुतिरि

जैसा कि हम पूर्व प्रसंग (जीवन परिचय) में कह चुके हैं कि राजा मानविश्रम की सभा में उदण्ड के समकालीन कवि भ्राम नम्पुतिरि की अर्ध कवि के रूप में गणना की जाती थी।

यद्यपि उदण्ड ने अपनी किसी भी कृति में

१- को० सं० की भूमिका में उद्धृत पृ० २३

इनका कहीं भी उल्लेख नहीं किया है, तथापि परम्परागत कथार्य इनसे सम्बन्धित जान पड़ती हैं।

कहा जाता है कि मानविक्रम के दरबार में प्रवेश करते ही पूनम कवि ने एक मणिप्रवास श्लोक राजा की प्रशंसा में प्रस्तुत किया :

तारितुत्तन्वीकिटादाचित्तमधुपुसारा राम रामाजानां ।
नीलसिन्धुवाण, वैराकरनिकेतनीमण्डलीमण्डमाना ।
नेत्रपातीह नीर्या तोटुकुशितयायुक्तेन्दुमेघाकुसिन्धु-
त्तरत्तिन्मसुरं विक्रमवर्, धरा हन्त । कल्पान्ततोये । १

इस श्लोक में हैत । शब्द अत्यधिक उपयुक्त ढंग से प्रयुक्त हुआ था । कहा जाता है कि समा में उपस्थित उद्दण्ड कवि ने उपर्युक्त श्लोक को उन्मुक्त कंठ से सराहना की एवं एक धिक्का का वस्त्र पूनम कवि की उपहार में दिया ।

एक अन्य किंवदन्ती है कि - एक बार तालि के मंदिर में उद्दण्ड कवि किसी आधारेण श्लोक की प्रथम तीन पंक्तियों को रचना करने के पश्चात् ज्योंहि चतुर्थ पंक्ति की रचना के लिये उल्टा हुआ त्योंहि उसके समक्ष एक प्रश्न उठा कि - मैं देवता की प्रशंसा में किस प्रकार अपनी रचना पूर्ण करूँ ।

किन्तु तभी वहाँ उपस्थित पूनम कवि ने उसके

१-को० ६० को भूमिका पृ० २३

२- वीणातलसन्मणि खलाय नमीस्तु तस्मै
वीणाधृणा विभवति तु णिनेतृणाय ।
अर्धायमोश्च तनमस्तुतये कथं स्यात् ?

अपूर्ण श्लोक की शब्दों की शय्या के सैतों द्वारा निम्नलिखित प्रकार से पूर्ण किया ।

इन कथाओं से स्पष्ट होता है कि पुनः कवि राजा मानविजय के दरबारी कवि कथमा उदण्ड के समकालीन कवि हो थे ।

इन साढ़े अठारह कवियों के अतिरिक्त अन्य जिन कवियों ने जयसिंहमानविजय के संरक्षण में उन्नति की एवं अपने उत्कृष्ट प्रतिभा से कवि उदण्ड को प्रभावित किया, उन सभी का वर्णन उदण्ड की कृतियों में यत्र तत्र परिलक्षित होता है। उनमें से कुछ प्रमुख कवि निम्नलिखित हैं ।

१- शंकर कवि

यह प्रसिद्ध कवि उदण्ड का मित्र था । ऐसा माना जाता है कि गुरुवन्दर के मंदिर में इन दोनों का परिचय उस समय हुआ था जबकि उदण्ड द्वारा प्रारम्भ एक कविता को शंकर कवि ने पूर्ण किया था । इन्होंने श्रीकृष्ण विजय नामक अपने काव्य में लिखा है कि " यह काव्य राजा उदय वर्मा (१५ वीं शताब्दी) के संरक्षण में लिखा गया है।

को० सं० काव्य में भी उदण्ड ने शंकर कवि का उल्लेख किया है। कोकिल की कोस देश जाने का परामर्श देते हुए

१- को० सं० की भूमिका पृ० २४

२- (वाचार्थ पृ० ३२०)

कहा है।^१

इस श्लोक के आधार पर हम कह सकते हैं कि
शंकर कवि भी उदण्ड के समकालीन प्रतीत होते हैं।

२- सुकुमार कथवा शंकर कवि

यह युक्त कवि भी उदण्ड के समकालीन माने
जाते हैं। इन्होंने कृष्ण विलास नामक एक काव्य लिखा है। जो कि उनके
नाम के समान ही सुन्दर और सरस है।

३- बासकवि

परम्परागत रूप से यह माना जाता है कि
‘राममर्मविलास तथा रत्नकैतवय’ नामक दो नाटकों का रचयिता, उदण्ड
शास्त्री का समकालीन स्व प्रतिद्वन्द्वी कवि था।

जयोरित मानविभ्रम के दरबार में इसको गणना
निराधार तथा सदिहपूर्ण ही प्रतीत होती है, क्योंकि इनकी कृतियाँ से
ज्ञात होता है कि - यह कौचीन संरक्षक राममर्म (१५ वीं शताब्दी)
के दरबारी कवि रहे थे।

१- कौलानैलावनसुरमिलान् याहि यत्र प्रथमै

वैलासीतप्रथितवचसः शंकरायाः कवीन्द्राः । (१- ६१)

रम्या कृष्णवज्रपटमरुदीजितव्रजसुग्या

मै पश्याज्जनत्तपुरीमाप्रितर् शंकरेण ॥ १- ८८

२- देतिर- स्त०सी०स्स० स्त० पु० २५१

३- दे० की० सं० की० भूमिका पु० २८

४- दे० स्त०सी०स्स०स्स० पु० ६५६

४- नत्ता कवि

नत्ताकवि ने सुभद्रा परिणय नाटक की भूमिका में कवि उदण्ड के जीवन पर संक्षिप्त प्रकाश डाला है। ऐसा कि हम पूर्व प्रसंग में उल्लिखित कर चुके हैं। कतः नत्ता कवि, उदण्ड शास्त्री का समकालीन ही है।

५- मैत्र नारायण

इस कवि का उत्तम उदण्ड ने एक स्थल पर अपनी को० सं० काव्य में किया है। कतः यह उदण्ड शास्त्री के समकालीन ही है।

६- कवकतु- कलणाकर पित्रोति

ऐसा विश्वास किया जाता है कि यह उदण्ड शास्त्री के समकालीन कवि थे। एक परम्परागत कथा के अनुसार एक बार उदण्ड शास्त्री मुम्बोस- मंदिर को देखने गये। वहाँ जाकर उन्होंने देवी कात्यायनी की प्रार्थना में एक श्लोक प्रस्तुत करना प्रारम्भ कर दिया। जब श्लोक^१ ही पूर्ण करने के पश्चात् ही वह सोचने लगे कि शेष कदं श्लोक किस प्रकार उसी तालित्व पूर्ण ढंग से पूर्ण किया जाये। किन्तु तत्क्षण ही उसने देखा कि उसके समीप स्थित एक यादर ने उसके अपूर्ण श्लोक को पूर्ण कर दिया^२। उस पूर्ण श्लोक को सुनकर उसने वाश्चर्य से मुह चुमा कर

१- को० सं० पूर्वभाग ७७ श्लोक

२- सम्भरितभूरिकृपमम्भ, शुभार्गं शुम्भतु धिरन्तनपिदं तवमम्भः ।

३- जम्भरिपुङ्गुमिवरुम्भयुगहम्भस्तम्भिकुम्भपरिरम्भपरम्भम् ।

- देखिए को० सं० की भूमिका पृ० २७

पूछा कि यह श्रेष्ठ विद्वान् कौन है ? नम्रता से प्रत्युत्तर मिला - यह कुरुणाकर नाम वाला व्यक्ति देवी का अनुचर है।

इस कथा के आधार पर हम कह सकते हैं कि कुरुणाकर कवि, उदण्ड के समकालीन कवि ही थे।

७- कृतस्वर नम्पुतिरि

उक्त कथाओं में इस कवि का उल्लेख मिलता है। एक कथानुसार एक बार उदण्ड शास्त्री उनके परिवार से मिलने गये तो परिष्ठ नम्पुतिरि विद्वान् ने उनसे पूछा कि - क्या तुम्हें पदमयी पर सिल्लि काशिका की टीका का अध्ययन किया है। प्रत्युत्तर में उदण्ड ने कहा कि - यह कृति तुच्छ लेखक द्वारा रचित है। खना कहते ही उन्होंने सम्पूर्ण मूल ग्रंथ का कविता पाठ प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार अपनी विद्वत्ता की प्रदर्शित किया। तत्पश्चात् केस्रीय विद्वानों से नामा माँगी^१। ऐसा कहा जाता है - उदण्ड की इन विद्वानों से मित्रता थी।

एक बार उदण्ड को अपने घर ठहरने का निमन्त्रण दिया तथा उनसे पूछा कि क्या आप यहाँ रह कर मेरे बच्चों की कुछ शिक्षा दे सकते हैं ? इस प्रस्ताव पर विचार विमर्श के पश्चात् उत्सवीकार करते हुए उदण्ड शास्त्री ने कहा - मैं साहित्य का अध्ययन कराने में

१- देखिए- के० एस० सी० २ पृ० ४१ (दे० की० सं० की भूमिका पृ० २७)

२- बाबा बाबयपदप्रमाण पदवीसंज्ञा संस्कृतया

सम्पदप्रतिपत्तनस्तम्भट्टीकुट्टाक धाटीगुणा ।

साटीप विहान् कथं तु रप्ते साहित्य मुद्रासे ।

प्रीतिरुत्तरिकाय बालवनितासंगः कथं रोचते ॥

- दे० की० सं० भूमिका पृ० २७

प्रसन्नता कैसे प्राप्त कर सकता हूँ ।

उपरोक्त कथन के आधार पर हम इनकी उदण्ड का सम्कालीन ही मानते हैं।

८- उदय कवि

उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर ऐसा माना जाता है कि उदय कवि द्वारा रचित मयूर संदेश उदण्ड की सम्कालीन रचना है। क्योंकि मयूर संदेश के पूर्व भाग में उदण्ड नामक एक कवि का उल्लेख है।^१ जिसमें इन्होंने 'जयन्तर्मगतम्' का वर्णन करते समय अपनी दूत की कवि उदण्ड से मिलने का परामर्श दिया है। किन्तु को० सं० में उदय कवि का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसे स्पष्ट होता है कि - उदय कवि उदण्ड कवि के कुछ पश्चात् हुए होंगे। मयूर संदेश काव्यकार के अतिरिक्त इनकी कौमुदी टीकाकार भी माना जाता है।

९- वासुदेव कवि

वासुदेव कवि उदण्ड शास्त्री का मित्र था। इस सम्बन्ध में एक किंवदन्ती प्रचलित है कि भृंग संदेश की प्राप्ति पर ही कवि उदण्ड ने को० सं० काव्य की सर्जना की थी।

यह कहा जाता है कि वासुदेव कवि भी सं० १४२३ ई० लगभग उत्पन्न हुआ था एवं मानविक्रम इसका संरक्षक था।

१- दे० मयूर संदेश पूर्व भाग श्लोक सं० ८३

किन्तु बाद में यह रवि वर्मन तथा गौडवर्मन के राज दरबार में चला गया ।

क्तः पन्द्रहवीं शताब्दी का मध्यकाल ही इसका रचनाकाल प्रतीत होता है। इस प्रकार वासुदेव कवि उदण्ड कवि का सम-कालीन कवि ही प्रतीत होता है।

जन्म तिथि

उदण्ड कवि ने अपनी किसी भी कृति में, अपनी जन्मकाल के विषय में कोई सूक्ति नहीं दिया है। क्तः अन्तर्ग प्रमाण के अभाव में केवल बाह्य साधनों के द्वारा ही उनके काल का अनुमान लगाया जा सकता है। पूर्व उल्लिखित समकालीन कवियों के आधार पर हम निश्चित रूप से इनका काल पन्द्रहवीं शताब्दी का मध्यकाल मान सकते हैं, क्योंकि कवि उदण्ड के संरक्षक , विद्वान् , साहित्यप्रमी जगदीश्वर मानविक्रम ने कालिकट में १४६७ ई० से १४७५ ई० तक शासन किया था । पूर्व उल्लिखित इनके सभी समकालीन कवि संरक्षक मानविक्रम के दरबारी कवि रहे थे । क्तः इनका समय भी पन्द्रहवीं शताब्दी ही सम्झना चाहिए ।

इस प्रमाण के अतिरिक्त समकालीन कृतियों में उल्लिखित रचनाकाल के आधार पर तथा अन्य राजाओं के शासन काल के आधार पर भी इनका काल सप्ततापूर्वक निश्चित किया जा सकता है। यथा- तंत्र समुच्चयकार ने अपने ग्रंथ का रचना काल १४२८ ई० उल्लिखित किया है। कोल देश के संरक्षक उदय वर्मा का शासनकाल प्रायः

१- बैसिर- स्व०जी० रस० रत्न० पृ० २५२

२- के० बी० कृष्ण अय्यर - द जगुनिंस वाक् कालिकट पृ० ३०२

पन्द्रहवीं शताब्दी ही माना जाता है।

बलदेव उपाध्याय ने अपनी संस्कृत साहित्य के इतिहास में उदण्ड का काल सत्रहवीं शताब्दी माना है। परन्तु इस काल के समर्थक प्रामाण्य प्रमाण अनुपलब्ध हैं।

क्तः उपलब्ध उपयुक्त प्रमाणों के आधार पर उदण्ड शास्त्री का समय पन्द्रहवीं शताब्दी का मध्यकाल ही निश्चित किया जा सकता है।

रचनाएं

मल्लिका-मालत

जैसा कि हम पूर्व प्रसंग में उल्लिखित कर चुके हैं कि उदण्ड कवि ने म० मा० नाम का दस अंकों का एक प्रकरण लिखा है। भवभूति के नाटक का इसमें अनुकरण किया गया है। इस प्रकरण में मल्लिका और मालत तथा समयन्तिका और कलकण्ठ की प्रेम भावनारं एवं विवाह की कल्पना प्रकृत कथा वर्णित की गई हैं।

इस प्रकरण में कवि ने मालती माधव की कथावस्तु ग्रहण करने के साथ साथ पार्श्व के नाम उनकीषारित्रिक विशेषतायें, नांदी श्लोक एवं भाषा शैली का भी एक दम अनुकरण किया है। प्रकरण की प्रस्तावना से प्रतीति होता है कि लेखक ने इस कृति की अपनी

१- उपाध्याय पृ० ६०६

२- ती० के० एस० एल० पृ० ६६

एच० सी० एस० एल० पृ० २५१

राजा की प्रार्थना पर सिला था। कहना जाता है कि मानविभ्रम की समा में प्रवेश करते ही उदण्ड ने एक श्लोक राजा की प्रार्थना में प्रस्तुत किया। प्रस्तुत श्लोक को सुनते ही, अन्य कवियों से अपनी दृष्टि हटाकर उदण्ड की प्रार्थना करते हुए म० मा० नामक एक प्रकरण की रचना करने के लिए उस प्रकार कहा -

‘ श्रीमन्नुदण्ड, विद्वन्, निरामय वर्ण मार्ग, कामदोग्धी ।
वाणी नाणीयसी ते ननु वर कविता भूषिता वाग्मितायैः ।
तस्मादङ्गनाय सम्यक् प्रकरणयङ्गना मत्सिकामाहताख्ये ।
किंविद् व्यङ्ग्यसार्गं विरचय विधिना सत्कवे, सत्क्रिया मे ।’ १

इस कृति की प्रस्तावना के द्वारा ही कवि उदण्ड का सामान्य जीवन परिचय मिलता है, इसलिए इस कृति ने अत्यधिक सम्मान प्राप्त किया है।

यह नाटक सर्वप्रथम रम्यच पर अस्त मीतसभा से पूर्व वातिर्मदिर में श्री स्थासीश्वरस्यसन्निधानम् नाम से सम्पन्न हुआ था। मातलीभाष्य का सफल अनुकरण होते हुए भी इसमें सर्वत्र कवि की नूतन मौलिकता के दर्शन होते रहते हैं।

कोकिल सन्देश

मत्सिका माहृत प्रकरण के अतिरिक्त उदण्ड शास्त्री ने केरलीय संदेश काव्यों की परम्परा में १६२ श्लोकों में निम्न

१- को० सं० की भूमिका पृ० १४

को० सं० नामक एक सुन्दर सरस काव्य लिखा है।

केरल प्रदेश में रचित संस्कृत के सन्देश काव्यों में को० सं० एक महत्वपूर्ण एवं द्वितीय संदेश काव्य माना जाता है। भण्डूत के वक्तुकरण पर लिखा जाने के कारण यह काव्य भी दो भागों में विभक्त है। पूर्वभाग में ६३ श्लोक तथा उत्तर भाग में ६६ श्लोक हैं।

पूर्व भाग में मार्ग वर्णन एवं उत्तर भाग में नायिका की विरहावस्था का वर्णन एवं सन्देश कथन है।

वशिष्ठा मास्त में यह किवदन्ती प्रसिद्ध है कि - रवि एवं गौड़ वर्मा के दारबारी कवि वासुदेव ने अपना भृगु-संदेश काव्य कवि उद्दण्ड के पास भेजा था। इस काव्य की प्राप्ति पर ही उन्होंने प्रत्युत्तर में कोकिल संदेश काव्य का सुजन किया।

अन्य काव्यों की तरह इसकी कथावस्तु भी काल्पनिक ही है।

केरल प्रान्त में रचित अन्य संदेश काव्य-
यथा- मयूर सन्देश, शुक सन्देश एवं भृगु सन्देश इत्यादि की तरह को० सं० में भी नायक सुप्तावस्था में ही किसी देवीय, अदृश्य शक्ति द्वारा वक्तुकरण किये जाने के फलस्वरूप अपनी प्रिया से वियुक्त हो जाता है। तदनन्तर वह वसन्त ऋतु के आगमन पर वाप्र वृद्धा पर वृद्धन्ती हुई कोकिल को देख कर, उसकी अपनी संदेश वाहक कार्य में नियुक्त कर, (चैन्नमंगलम्) अयन्त मंगलम् में स्थित, मारुत्कर गृह में निवास करने वाली, अपनी प्रिया

के समीप , विरहात्मक सन्देश भिजवाता है।

कौ० सं० काव्य सर्व म० मा० प्रकरण के वृत्ति-
रिक्त उदण्ड शास्त्री को कुछ मुक्तकों का रचयिता भी माना जाता है।

वन्धितम लेखन कृतियों में ' नटाकुश ' तथा
' स्वाति- मुक्तक ' उदण्ड द्वारा रचित है ? इस विषय में कुछ संदेह
है, क्योंकि इन दोनों मुक्तकों में कोई ऐसा प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता
जिससे ज्ञात हो सके कि यह दोनों कृति उदण्ड द्वारा ही रचित हैं।

नटाकुश

नटाकुश एक प्रकृत वालीचनात्मक कृति है,
जिसमें विशिष्ट अवसरों पर सम्पन्न होने वाली नाटकों में केरलीय
वभिनेताओं द्वारा प्रस्तुत अभिनय विधि का वालीचनात्मक रूप से वर्णन
किया गया है।

कुछ लोगों के अनुसार- इय्या लेख एक
नम्पूतिरि विद्वान् है, जो केरलीय वभिनेताओं द्वारा प्रस्तुत संस्कृत
नाटकों में, मनोरंजन हेतु सीमाओं का उत्सर्जन करने के कारण अत्यधिक
क्रुद्ध था ।

उत्तर स० परमेश्वर अय्यर ने अपने केरल
साहित्यचरितम् में कहा है- ' नटाकुश उदण्ड की ही एक कृति है जिसमें
केरल के वाचक्य द्वारा प्रस्तुत किये गये संस्कृत नाटकों की अभिनय विधि
वालीचनात्मक रूप से वर्णित है। उसमें ऐसा कोई प्रत्यक्ष प्रमाण

नहीं मिलता, जिससे सिद्ध हो सके कि यह उदण्ड द्वारा ही रचित है।^१

२- स्वाति मुक्तक

इस मुक्तक में कौटुटयम नामक शाही वंश की एक स्वाति रानी की प्रशंसा की गई है। उल्लूर एस० परमेश्वर वय्यर ने सर्वप्रथम इसकी प्रकाशित किया^२। उनके अनुसार इस कृति का लेखक उदण्ड कवि ही है, क्योंकि उनके श्री० सं० (१, ४७) काव्य में 'स्वातीनाम-दितातिपतिपुता' इस प्रकार का उल्लेख मिलता है। इसमें सामान्य रूप से कवि ने उसकी सुन्दरता का ही उल्लेख किया है। किन्तु इस मुक्तक में लेखक ने नायिका को बहुत सी कलाओं में पारंगत कह कर उसकी विविध योग्यताओं का परिचय दिया है। संभवतया इसका लेखक कोई अन्य कवि ही। परम्परागत कथाओं के अनुसार इस कृति का लेखक भी कोई नम्पू-तिरि ब्राह्मण हीना चाहिए।

वतः इन दोनों कृतियों के लेखक के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

अन्य मुक्तकों की रचना

केरल में रहते हुए कवि उदण्ड ने अनेक मुक्तकों की रचना की थी। इनमें से अधिकांश कौञ्चित्य श्लोक प्रेरणात्मक शायरी में रचे गये हैं। उनके विशिष्ट लक्षण निम्नलिखित हैं। वाश-

१- श्री० कै० एस० एस० पृ० ८५

२- साहित्य परिषद् त्रैमासिक वा० ७ नं० ३

रचना में प्रवीण होना, प्रकृति का ज्ञान होना, मूल शीतों में उपलब्ध
सूचना के आधार पर कैल के सामाजिक जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित
करना, दण्ड कवियों के प्रति तिरस्कार एवं श्रेष्ठ विद्वानों के प्रति सम्मान
प्रदर्शित करना और आवश्यक नम्रता के साथ ही गर्व का जनास प्रदर्शन
करना इत्यादि ।

इनके द्वारा रचित मुक्तकों में से कुछ प्रमुख
मुक्तक निम्नलिखित हैं :

परम्परागत रूप से यह माना जाता है कि
जब उदण्ड शास्त्री कैल में आया था तब वह बहुत ही दर्यामिमानी था,
उसने स्थानीय दण्ड कवियों की तुलना बन में विचरण करने वाले गज से
एवं अपनी तुलना सिंह से की है । इस निम्नलिखित मुक्तक में उनकी वरि-
ष्ठता का उक्ति मिलता है :

‘ फलायुर्व फलायुर्व रे रे दुष्कविकृजराः ।
वेदान्तवनर्यनारी ह्यायात्युदण्डकेसरी ॥ ’ १

इसी प्रकार एक अन्य मुक्तक में उदण्ड ने
स्वयं अपनी विद्वत्ता की प्रशंसा एवं दण्ड कवि का तिरस्कार एवं उपहास
करते हुए कहा है :

‘ स्कन्धपाकृष्टिपिष्टिघटनासंजातगर्वादिताः ।
कन्यामाश्रुविन्दकाः कवयिर्मुसृजन्ति लज्जामुक्तः ।
स्वर्गनिर्गतनिर्गलत्सुरस्रीत्पाथः प्रपात प्रधा ।
प्रत्यास्थानष्टीकषापि वनशा जिह्वेति जिह्वा मम ॥ २

कहा जाता है कि - एक बार दोपहर में यात्रा करते समय कवि उदण्ड त्रिभूर के प्रसिद्ध बलयाधीश्वरी नामक मंदिर को देखने के लिए गये थकान, भूख तथा प्यास के कारण पीड़ित हुए वह वहाँ भोजन करना चाहते थे किन्तु मंदिर के समीप कुछ भी भोजन न प्राप्त होने पर उसे निराशा हुई। तत्काल उस परिस्थिति पर 'देवी' को सम्बोधित करते हुए एक श्लोक प्रस्तुत किया -

‘कान्तः कपाली कठिनः पिता ते’ भी’ ति मातुस्तव
नाम धियम् ।

कथं नु भद्रं बलयालयस्य वदाम्यन्ता मातृवृत्तिं बोधयीतु ॥ १

एक अन्य अवसर पर जब उदण्ड तासि के मंदिर को देखने गये। वहाँ उन्होंने देखा कि मंदिर के तन्दर का द्वार किसी धार्मिक कृत्य के कारण बन्द था, मंदिर का अनुचर ठमरू से 'स्टक्का' इस प्रकार की ध्वनि निकाल रहा था। ठमरू की मधुर ध्वनि को सुन कर उदण्ड की काव्यात्मक प्रेरणा उत्तेजित हुई, तत्काल उसने अपनी शीर्षक पर एक प्रसादक श्लोक इस प्रकार से प्रस्तुत किया -

‘नृत्यदूर्ध्वटिकरगतठमरूकहुमुहुमुपहृत्तपरिपमिन्धः ।
कल्पदमा ठरू विकसित कुमुदमधरसमधुरिमसद्वारिण्यः ।
मन्धरपाधरविमक्षितजलनि धिघुमुघुधनरवमदमन्थिन्धः ।
शैलाधीश्वरानुसर, विदधुमुधुसुतमयि तव ववसंनिधयः ॥ २

यह मुक्तक उनकी महान् प्रतिभा का एक प्रदर्शन मात्र है।

कास्त सितम्बर मास में सम्पन्न होने वाले
केरल के प्रसृत पर्व से वाकचर्चित होकर एक मुक्तक इस प्रकार प्रस्तुत किया -

“ जीकृयन्ते पूषुस्ततयश्चापताडिन्य उज्ज्वैः

सर्वा नायः पतिमिरनिर्त सम्पयन्त्यर्कामान् ।

बभ्रम्यन्ते सकलपुतर्गर्वास्तमाम्यः प्रदातु ।

चित्तं वस्त्रं, अवणकुतूर्णं वर्तते केरलेषु ॥ ” १

एक मुक्तक उसने केरल के प्रसिद्ध व्यंजन चावल
से निर्मित तीर पर लिखा है, जिसमें इन्हीं चावल की तीर की विशेष-
ताओं की तुलना सुन्दर कन्या से की है :

“ वीजतापनियन्त्री सुराविरत्तावण्य सम्पदा सुखा ।

अधरीकृतोपर्वता भाणा लीणाधरी व रमणीया ॥ ” २

एक बार जब “ मानविक्रम संरक्षक ” नेड
जफे श्याल को किसी अपराध के आरोप में दंडित किया इस बात पर
भी जब उदण्ड का ध्यान वाकचर्चित हुआ तब कवि ने एक राधा पर
श्लोक प्रस्तुत करते हुए कहा-

“ चतुरं तुरां परिवर्तयतेः , पथि पौर
जान् परिवर्तयते । न हि ते भुज भाग्य भवो विभवो, भगिनी भगभाग्य
भवो विभवः । ” ३

* एक अन्य मुक्तक में कवि उदण्ड ने केरल के

१- को० सं० की भूमिका पृ० ३३

सो० के० एस० स्त० पृ० ७६

२- ३ को० सं० की भूमिका पृ० ३४

एक अन्य मुक्तक में कवि उदण्ड ने कैरल के प्रसिद्ध सुपारी वृक्षा की विविध विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहा है :

‘तृष्णाकृत्ति कृत्तुन्ति बामुत्तरसंस्तुन्ति नमोत्कृन्ति च
स्फायात् स्फिण्णि तमात् पत्रमवृणत्वाण्णि प्रमायुज्जयपि ।
हंशदन्तनियीनप्रविगतद् बहुमन्मुष्णीकता-
न्यन्यः कोनु तमेत् प्रयागपतन श्रोद्भिन्दस्वनी नरात् ॥’ १

इन उपर्युक्त मुख्य मुक्तकों के अतिरिक्त उदण्ड ने और भी बहुत से मुक्तकों की रचना की थी। इन रचित मुक्तकों से तत्कालीन युग की सामाजिक, सांस्कृतिक धार्मिक, राजनैतिक, मौनीतिक दशा का सरलता से अनुमान लगाया जा सकता है।

पुनर्व अध्याय

- १- कौशिल्य संवत्त काव्य का कथासार
(पूर्व भाग एवं उत्तर भाग)
- २- काव्य में वर्णित मार्ग का निर्देश

कौकिल-संदेश का संक्षिप्त कथासार

(पूर्वभाग)

ऊँचे प्रासाद में कौह प्रेमी अपनी प्रिया के साथ प्रेमात्माप करते करते सो जाता है। जाग्रत होनेपर वह स्वयं को कौली में कम्पा के बाहर तट पर स्थित, पार्वती के मन्दिर के समीप, प्रिया से वियुक्त पाता है। यकायक उसे एक वाकाशवाणी सुनाई देती है : “ वरुणपुर के दर्शन के लिए विमान द्वारा जाती हुई अप्सरायें तुमको यहाँ ले जायी हैं, सम्पूर्ण विपत्तियाँ को नष्ट करने वाले इस क्षेत्र (कौली) में यदि पाँच महीने निवास करोगे, तो तुम्हारा अपनी प्रिया से पुनः वियोग नहीं होगा । ”

उक्त वाकाशवाणी को सुनकर वह कौली में निवास करने लगा । विप्रयोगावस्था के दो-तीन मास तो शिव-शिव का उच्चारण करते हुए व्यतीत कर दिये, लेकिन चैत्रारम्भ में वसन्त के वागमन पर समीप स्थित वाप्रवृद्ध मंजरियाँ का सेवन करने वाली, मधुर स्वर में गुरुकृती हुई कौकिल को देखकर प्रिया के स्मरण से विवश हुए उसने कौकिल से अपनी विरही प्रिया के पास संदेश ले जाने की प्रार्थना की । तत्पश्चात् उसने अपना संदेश कहना इस प्रकार प्रारम्भ किया :

“ हे मित्र ! तुम्हारा यहाँ जाने पर स्वागत है, निश्चय ही तुम दो प्रेमियों के अकस्मात् हुए पृथक्ता के कष्ट को जानती

हो, कतः मेरे संकेत को लेवाकर विरहित प्रिया को सान्त्वना दो,
 क्योंकि मित्र के द्वारा लया गया प्रेमी का संकेत प्रायः वियोग-पीड़ित
 स्त्रियों के प्राण धारण में समर्थ होता है। ”

तदनन्तर वह कोकिल की वफाी प्रिया के
 निवास स्थल तक के गन्तव्य मार्ग का निर्देशन देते हुए कहता है :

“ हे पतिराज ! तुम तीनों दिशाओं को
 जोतने वाले मंगलाग्र देश में , जहाँ प्राचीनकाल में ‘ जयन्त ’ तपस्वी
 ने स्यासि प्राप्त की थी, ऐसे वृष्णी नदी तट पर स्थित देश में ‘ जयन्त-
 मंगलम् ’ नगर को जाना । वहाँ तुम सम्पूरार्त्ता स्त्रियों में मुक्तमाला
 सदृश मुग्ध करने वाली वियोग के कारण दीन कनीहुई एक बाला को
 देखोगे । तुम्हारा गन्तव्य मार्ग अवरहित हो, कतः तुम्हारे कल्याण हेतु
 कहता हूँ- वृष्णी की सिन्धु झाला में विभ्राम करने के पश्चात् पश्चिम
 में वल्लभपुर को जाना- जहाँ कामलया देवी के फाल्गुन मास में होने
 वाले अमरीत्सव को देखकर घर वापिस आते हुए मनुष्य तुम्हारे मधुरासाप
 को सुनने से जानन्वित होते हुए पश्चिमी समुद्र तट पर्यन्त वल्लभ नगरी
 तक तुम्हारे सहायक मित्र होंगे ।

हे मित्र ! करिगिरितट पर स्थित विष्णु को
 पूजा करना, जहाँ पर आज भी यज्ञ सम्बन्धी अग्नि का धूँवा ब्रह्मा की
 उपस्थिति को लीला उत्पन्न करता है। कम्पा के तट पर बंटा रह पीठों
 में महान् कामपीठ को पूजा करना, जहाँ पर स्वयं ही शक्ति की देवी
 विद्यमान रहती हैं। तदनन्तर सीधे जाकर, सप्त वायव्य-वृद्धा की झाला

में विनाश करते हुए शिवजी के दर्शन करने के बाद, वाकाश में विचरण
 करने पर काँचों की सुन्दरता तुम्हें कृत्यार्थि मोहिनी लगेगी, ज्ञातः जाने
 में विलम्ब मतकरना। क्योंकि बन्धु के प्राणरक्षा की स्थिति को तुम्हारे
 बलि रिवत दूसरा कोई भी नहीं जान सकता। पश्चिम की ओर जाते हुए
 दक्षिण- सिन्धु की देखोगे, जिसकी लहरों के बान्धोस्तित होने से तट पर
 उत्पन्न पान, सुपारी एवं कृच्छी वृक्षाँ की जामर छित रही होगी,
 एवं विकसित हुए कमल पुष्पों से उत्पन्न सुगन्ध का पान करते हुए प्रम-
 रियों का समूह म्दमत्त होकर मूढा रहा होगा। हे मित्र ! उस दक्षिण
 सिन्धु तट पर स्नान करती हुई सुन्दर ब्रम्हि- स्त्रियों की देखने के पश्चात्
 दक्षिण ओर की ओर प्रान की देखोगे, जिसके समीप की ब्राह्मणों ने स्नान
 द्वारा पवित्र बना दिया है, यज्ञ से उत्पन्न धूर के द्वारा जहाँ के वृक्षा
 वृक्षित हो गये हैं, मठ वेदमन्त्रों की स्तुति द्वारा प्रतिव्यवहित हो रहे
 हैं, जिसके कारण मार्ग अवलम्ब होगया है। वहाँ के निवासी वेदों में
 निपुण हैं, सम्पूर्ण शास्त्रों के अवगाहन से जिसकी बुद्धि प्रसर हो गई
 है, जिसकी कविता कर्त्तृरक्षित एवं सरस है- स्थानीय निवासियों की
 विशेषताओं की पर्वत शिखरों तथा वृक्षाँ पर रहने वाले तीर्त्तों की पाठ
 करते हुए दिलाई देंगे। उस क्षेत्र की पार केली समय, विकसित तिलों
 के पुष्पों की देख रही नील स्त्रियों पर परितुष्ट दृष्टि डालते हुए शिव
 के निवास स्थल बिल्ब क्षेत्र में प्रवेश करते ही नोवा नदी की प्रोत्तल बाहु
 द्वारा बान्धोस्तित फाण्डों से तुम्हारा स्वागत होगा। तत्पश्चात् समस्त
 कामनाओं के प्रदाता, वाक्मान में पार्वती से सुशोभित भगवान् शिव।
 पर शान्ति दृष्टिदासना - जिनके नेत्रों की ज्योति में कामदेव फणि
 के समान वाचरण करता है, जो संसार को नष्ट करने वाले हैं- इत्यादि
 गुणों से अलंकृत शिव के दर्शन से डरना नहीं। हे मित्र ! वहाँ स्थित

उषानी के सुगन्धित पुष्प तुम्हारा राजकी स्वागत करेंगे। वहाँ के लता-
 कुँवों से जाते हुए अभिसारिकाओं के स्वेदकणों को यदि तुम अपने कंनों
 से उत्पन्न वायु से दूर कर दोगे, तो वह- भूतल वाली वे अस्मिन् दृष्टि
 से तुम्हारी कर्मा करेंगी। जोल प्रवेश को पार करने के बाद समीपस्थ
 गहन वन-कार से सुप्त वन-भूमि के प्रत्येक कुँव में शबरी के समूह लताओं
 एवं पुष्पों की लयना बना कर, पारस्पर छीटा करती हुए कथाओं की कह
 रहे होंगे। लता समूहों में विनय करती हुई वहाँ की वन देवियाँ वन
 नमरी के केशों से हवा करती हुई तुम्हारी सेवा करेंगी। तुम कुछ समय
 के लिए वहाँ स्थित लताओं का उपयोग करना। है मिव । शीघ्रता से
 गहन करती हुए कुछ दूरी पर साहस्य पर्वत से निकलती हुई, कल-कल की
 ध्वनि से सुप्त कावेरी नदी की देखोगे, जिसकी लहरों के नीचे राजर्षि
 निवास करते हैं, ऐसी मातृभूमि के, मध्य में स्थित महत्तमणि से जटित
 रंगनाथ की देखोगे।

कावेरी नदी तट पर स्थित पर्वत के नीचे बसे
 हुए 'होसल' ग्राम में 'लक्ष्मीनारायणपुरम्' नाम से प्रसिद्ध गुरारि
 मंदिर की देखोगे। यहाँ कि अभिसारिकाओं अपने स्थित राज्य से कामदेव
 की भी अपने बालों में फँसा लेती हैं। वहाँ पर्वत के नीचे तट पर स्थित
 मार्गवों के नेता भृगुसुतपति स्वयं ही गुरु भावना से प्रेरित होकर ज्ञानिय
 कुल को नष्ट करने हेतु एवं ब्राह्मणों को इस दीप में प्रवेश हेतु पृथिवी पर
 उपस्थित हुए हैं। वहाँ स्थित अमलक धरणी मंदिर में भगवान् विष्णु की
 पूजा करके, पर्वत शिखर से नीचे उतरने पर, समुद्र तट पर दुपारी को
 लताओं से सुप्त, केस भूमि की- जिसकी दृष्टि परशुराम की पराक्रम-

जाती भुजाओं से हई है, देखोगे । इसके पश्चात् बाहुमयी नदी तट पर स्थित शिव मंदिर को देखोगे, जिसके समीप में सिंह के मस्तक पर विराजमान राजास वाहक के बध हेतु तीक्ष्ण धार वाले शिखर को हाथ में लिए हुए देवी भद्रकाली को देखोगे । कुछ दूर ठहर कर उसकी सेवा करना । मंदिर के निकट यदि तुम्हारी निन्दा करें तो उस समय अपनी मधुर वाणी में बहुरूपी हुए उनकी नीर की प्राप्ति का विचारण कर देता । इस प्रकार पश्चित से पुनः करने के बाद पुरखीराजाओं की राजधानी में प्रवेश करते हुए तुम अपने मार्ग में केवल की कन्याओं के कटाक्ष पूर्ण नेत्रों से बार-बार आकर्षित होकर प्रसन्नता प्राप्त करना ।

हे पतिराज ! यहाँ के कीमती-रत्न

मीमांसा दर्शन के कारण प्रसिद्धि को प्राप्त, पुरखीराज में हरिश्चन्द्र नामक एक राजा उत्पन्न हुए, जिन्होंने युद्ध में शत्रुओं को विनष्ट किया तो देवी ब्रह्मा स्वयं ही उपस्थित हो गई थी । हे मित्र ! उस नगर में विचारण करते हुए लक्ष्मण के स्वामी श्रीकृष्ण को देखोगे । उसी के अग्रभाग में स्थित पुण्य पत्तणों से युक्त नवीन उद्यानों में बिहार करते हुए अपने मार्ग-पश्चित श्रम को दूर कर देना । यह देवता की पुजा हेतु स्वाती नामवाली राजा की पुत्री वाप-पत्नी की मधुर टन टन ज्वनि के साथ केटियों सहित यदि यहाँ जाये, तो हे कीर्ति ! निश्चय ही वह तुम्हारे मधुरासाप के द्वारा कीर्ति सिद्धा ग्रहण करेगी । एवं यज्ञ के कारण उत्पन्न, स्वैर-कणों से युक्त पुनः वाली जब वह तुम्हारे समीप जाये तब उस पर अपनी जीभ से पुष्पों एवं कटियों के मकरन्द बिन्दुओं का छिड़काव करते हुए उसकी मुग्ध कर देना ।

अपि तुम्हारा मन्त्रव्य स्थान दक्षिण दिशा
 है बाग है, तथापि है मित्र । अपने उदित वाहन कार्य को करते हुए पश्चिम
 की ओर जाने पर लिखी की उपस्थिति के कारण अविश्वम्भ्र ग्राम
 की देखने में यदि बाकी दृष्टि अक्षय हो गई तो तुम्हारा जीवन
 निष्कल हो जाएगा ।

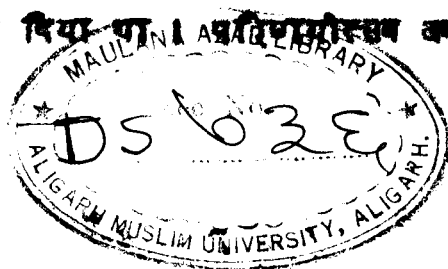
कैलास पर्वत की प्रसिद्धता को हीने बाते,
 होने सेपुने हुए लिख- भवन में प्रवेश करते, समीप स्थित प्राणिनाई के वृक्षाई
 के नीचे नियमित दिनचर्या के बाद विनाम कर रहे प्राणिनाई की कैला
 भक्तने की क्रियाओं का अनुभव करना । तत्पश्चात् सन्ध्याकाल में विष्णु
 की स्तुति करते वाह्य उष्ण में स्थित वृक्षाई की शाखाओं पर नसे जाना ।
 वहाँ पर पार्वती उदित तात्त्व श्रद्धा करते हुए , लिख के प्रसिद्ध तात्त्व
 मृत्यु को देखने । है कुराणी हृदय बाते । सन्ध्याकालीन पर्व के समय
 दक्षिण प्रवेश की कन्यायें वास्तव में स्वर्ण कटी रीं से अर्पणदास्व
 को करते हुए तुम्हारी दृष्टि को आकर्षित करेंगी । जिसकी शायद पने
 अन्धकार में उदित हुए अन्धविषय की तरह प्रतीत होगी ।

रात्रि में अन्धकार हो जाने पर वहाँ स्थित
 किसी वृक्षा की कोटर में रात्रि व्यतीत कर देना । समीप स्थित पश्चिमी
 महाशानर है जानेवाली अतः कृपुविनीके पुष्पाई की सुगन्धित वायु तुम्हें
 सीप्री की सुता देगी । प्रातःकाल होने पर उदित हुए सूर्य की तात्त्व किरणों
 के आकाश में दिशाई देनेपर अपनी यात्रा पुनः प्रारम्भ कर देना । रात्रि
 के समीप स्थित विवरण करते हुए अक्षय पक्षी की काम पीडित दृष्टि
 तुम्हें अपनी अंत्य की याद दिलायेगी ।

उनीप स्थित ताई के परिचिष्ट सम्बर

मंदिर में स्थित भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करते, लतावती के बगीचे की सुगन्धित वायु से सुकृत, कोस देश- वहाँ जाय भी ऊँच के प्रसिद्ध कवि की कीर्ति की प्रशंसा होती है। वहाँ स्थित महाबानर के तट पर स्थित हुए नाव के समूह ऐसे लगते, मानों परंतराज वहाँ से उड़कर पुनः जल में जा गये हों। वृक्षाँ से उड़ कर सम्मानपूर्वक वहाँ की सुन्दरता की देखी हुए, पुष्पाँ की बाटिका से सुकृत मिष्णु का लय गूँज जो सखी का उत्पत्ति स्वसई, ऐसे पवित्र स्वस की देखी। उस स्थान से वृक्षों स्थान की बाते समय कृच्छ्र प्रवेश की सुन्धा कन्याओं पर लालिमा दृष्टि डाली हुए बाते समय कृच्छ्र शीत रावणस का लय भाग वाकास लण्ड की तरह सुमनों प्रतीत होना, जिसमें पराक्रमी, वीर एवं हुए रावा उत्पन्न हुआ जिसने परंत से समुद्र बन्धन वाधिपत्य साधन किया। वहाँ के प्रत्येक भवन में स्नेत होने से पुनः होनि, जिसमें पुष्पाँ की सुन्दर नगर निर्मित शय्याओं पर काँतों एवं कामिनीयों का समूह कामासक्त होकर मनीषिपूर्वक विचरण कर रहे हों। समुद्र देवता की कन्या उस नगर में बस गई है। यह जान कर उन्होंने उस द्वीप में कैदों प्रकार के रत्नों से सुकृत नौकाओं की उपहार स्वरूप समुद्र में उड़ल दिया। यदि तुम भवनों के अग्रभाग पर लगे स्वतः वर्ण के पत्थरों की स्वतः किमलय सम्पन्न कर भरण करना आरम्भ कर दीने तो वातायन में स्थित क्षिप्रों से देखी जाती तलपणियाँ तुम्हारा हस्तताली से उपहार करेंगी। तत्पश्चात् इस कन्या से एवं कसी के प्रभाव के कारण देखीजमान हुए (तिव) मृत्युंजय के धाम स्वेतारण्य पहुँचने पर मृत्यु के देवता, मरणाव के अवश्य दर्शन करना। मृत्यु के देवता की पैरों की ठीकर के द्वारा वना पर प्रहार करने से तात्त हुए चरणों बाते उस देवता की पूजा करना, जिसकी छायाँ से फल कर पार्वती ने उनके कपलस्वी चरणों पर

पुष्पन किया था, परिणामस्वरूप उनकी फसत के नीचे बना दिया, ताकि
 कमराब बृक्ष बाधे, जिनके पुष्पों की सहायता से विलाप करे। इसके समीप
 में प्रभावित होती हुई बिता नदी सायंकाल में गंगा नदी की तरह प्रति-
 विम्बित होती है। इसके तट पर स्थित नावा-मंदिर के मध्य में भगवान्
 विष्णु की कमल पुष्पों पर विराजमान सत्सी के साथ प्रणय व्यापार
 करते हुए देखोगे। हे प्रिय मित्र। महाभाय पर्व के वा जाने पर कैलाश
 खुलियाँ वहाँ पर अपनी प्रियतमों से मिलने के लिए समुद्र में जाती हैं, जहाँ
 पर ममत्त हुर, प्रपारों का समुद्र उनके कमलरूपी पुत्र को पान करने के कारण
 कमल पुष्पों को नहीं छूँती हैं। ग्रीष्मकाल में नदी की सतह शुष्क-निवास से
 वाष्पमान कमल बाधो होगी, जहाँ केवल प्रेस में विचरण करते हुए सूर्य
 की किरणों से भुलसने के कारण लीलाकाय राजर्षि बपलता करते हुए
 ऐसे प्रीति हंगि, मानो विश्वासत्वा के कारण दुःखीहुँ पेरी प्रिया के
 सुपरासे केशों की लट्टें बिखर रही हों तथा उनका कटिपुत्र कृतता के कारण
 नितम्बों से लिपित हो रहा हो। सम्बर झील में स्थित, तास्ता के देवता
 की इस नदी तट के मार्ग में लिकार लेने के लिए बेम्यान घोंद पर विचरण
 करते हुए देखोगे। अतः पक्षिम के कारण उत्पन्न पक्षिनी को तुम अपने डेनों
 की वायु द्वारा दूर कर देना। तुम्हारे द्वारा की गई इस झोटी सी सहा-
 यता की महानता के साथ गणना होगी। बस्ती तथा कौण्यो नदी का
 अतः प्रवाह वाश्चर्यजनक है, जहाँ पर बिषा के पारसी कैलाश प्रालम्ब निवास
 करते हैं, ऐसी उस नदी की पार करते, वाप्र उपवनों की पीढ़ी झीरु कर
 गुणों की निधि नैव नारायण के पवित्र देस में पहुँचोगे। जहाँ सुवि-
 पुमान्तय की देवी कात्यायनी की चरणों से पूजा करना- जिसकी राक्षस
 म हिम ने नाश दिया था। परिणामस्वरूप जलसर पर जिसके प्रति ने चरणों



को कपूर की छिटा पर रख दिया था ।

जाने जाने पर पूर्वी रणरत्न की भूमि में दोनों मोर्चाबा के संरक्षक महिर्ष के पवित्र स्वस्त की देवीने जहाँ नित्य विद्वानों का समुह बाद विवाद के लिए एकत्रित होता है। उन एकत्रित हुए विद्वानों, वैवाक्यों तथा तार्किक विद्वानों के साथ परस्पर बातचीत की सास्नी एवं पौराणिक कथाओं में भी व्याख्या मिलती है। एकत्रित हुआ विद्वत् समुह निश्चय ही तुम्हारी मधुर वृत्ति को सुन कर संतुष्ट होगा । वृष-पुरी में लंकर की गीद में डूबता कर्त्तवी हृष्ट पार्वती की लटों को झुने से घुनझिटा हृष्ट, जपेसी के पुष्पां से तथा शिवजी के मुस से निकलते हुए फेन से घुनझिटा वायु द्वारा तुम्हारा समीप से गुजरने पर अभिनन्दन किया जायेगा । इस प्रकार गौरी से मुक्त, दितरीर धारण करने वाले कामदेव की वन्द्यवर्ति से मुक्त सुहृद् देवता की मूर्ति की देवीने, जिसका शरीर का अग्रभाग स्तनों के कर के कारण नम्र तथा पुष्टभाग नितम्बों तक घने बालों से मुक्त होगा , जहाँ मुक्ति के लिए तुम देवता की पुजा करना । उनके समीप ही डेनी से उतरते हुए स्वर्ण भवन में प्रीति करके, दुर्गा की सम्पूर्ण मूर्ति की प्रणाम करना तथा मंदिर के बाह्य प्रांगणों में बास करने वाले प्रभु देवकी एवं द्वार रत्नकी से मुक्त देवी अण्णिम की प्रतिमा पर पाणिक दृष्टि डालना । पस्तवों का स्पर्श कर वाकास्तत में विचरण करने पर, विष्णु के पवित्र वनम ग्राम के मुदों को सपन हाया में विवास करने वाले जहाँ के नागरिक पाणमर के लिए तुम्हो पहचानने में अक्षफस हो जायेंगे । घने वनमार्ग में काती के मंदिर में, जहाँ देवी के अक्षर मद्धा से यमराज की महिर्षों के वीर्गों को रस्सी से लीप कर, देवी की प्रसन्नता हेतु बलिदान का प्रकल्प करती हैं तो उनके रीने के कारण देवी की विजया वासी मुस्क-राष्ट के साथ हस्तदीप करती हुई तुम्हें दिताई देगी ।

उत्पन्नवायु जागे जाकर रीकर द्वारा वाहित
 जवाहरपुरी को देखोगे, जहाँ के ऊँचे भवनों पर सूर्य के पीठों के पीछे
 से लहराती हुई फाकावाँ से तथा झुण्णों से जाने वाली शीतल वायु,
 प्रिय के समान कपल सभी मुक्त वाली, रति के कारण पक्षित, एतद्विषयों
 के बेहरी पर जायी हुई फलान के कारण उत्पन्न स्वेद कणों को दूर कर
 देगी। इसके जागे जाने पर एक ऐसी नदी दिलाई देगी- जहाँ रंग विभिन्न
 सात, नीले पूर्ण विकसित कपलों की जाया प्राप्तः कासीन सूर्य के उदित
 होने पर ऐसीलगेनी, पानी माहीदयपुर की बधुनों के गर्दन की कस्तूरी
 धी दी गई हो। स्फटिक के समान सुन्दर व स्वच्छ, पक्षी के समान
 नेत्रों वाली, कृपाकी के समान सुन्दर स्तनों वाली तरंग युक्त भ्रूषट्ट-
 वाली, कपल के समान मुक्त वाली कालि की केशों वाली वह उन सभी को
 सुन्दर लगती है, जो मार्ग में अनुसृत दृष्टि तिर गुजरते हैं किन्तु उनके
 विपरीत अन्य लोगों को कुछ गम्भीर दिलाई देगी। अतः हे धूमन ।
 वाकाल में विचरण करती हुए तुम नदी पर फहराती हुई प्रवरियों का प्रति-
 बिम्ब जल में रेखा दिलाई देगा, पानी तीव्रता से प्रवाहित होती हुई
 नदी की तटों में एक नीले वर्ण के कपलों का समूह हो। हे कोटि ।
 पुराताप कस्ती हुई, दक्षिणी तट पर पहुँच कर, तुम व्यस्तमस्तम् नाभ
 से विस्थात वैभवताली नगर को देखोगे। जहाँ स्थित नवीन उद्यानों में
 ममय्य महिषाग्रे निर्द्वयों की कलाओं का उपयोग कस्ती हुई प्रमण कस्ती
 रहती हैं। शरीर, केशों की मधुर ज्वनि स्व प्रमण करती हुए प्रमणों के
 सुलोमित होवाँ, इस नगका गोपुर द्वार एतनों की पंक्तियों से निर्मित
 है। अतः हे प्रभाभरण । किन्तु मार्ग जाने हुए भी वहाँ जाना सुमय है।

उत्तर भाग

वयन्तवीनसम् नगर की समृद्धता का वर्णन करते हुए विरही प्रेमी पुनः कोकिल से कहता है- इस विशालनगर के मार्ग में बहुमुख्य रत्नों की बिखेर कर कप्त पर विराजमान बिज्जू ने शान्त युक्त इस शहर को इसलिए स्वीकार किया, क्योंकि समृद्धि की देवी सत्यी, उचित हुए चन्द्रमा के समान, धृष्टी को धारण करने वाली समुद्र के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। इसके समीप स्थित पृष्ठभाग की ओर प्रवाहित निर्मल धारा वाली नदी को देखोगे।

प्रसरियाँ से वाक्य स्वतः वाली वसरिपुष्टि की प्रत्येक गली इन्द्रनील मणि से बहित प्रतीत होगी, जहाँ भी अन्धकार युक्त मार्ग में सूर्य की किरणों के प्रतिबिम्बित होने पर अभिसारिकायें निकल हीकर दिन में भी डीढ़ा करती हुई देखी जाती हैं एवं जहाँ रात्रि में नायिका के कप्तकी मुख के सौन्दर्य को श्राने वाली चन्द्रमा द्वारा प्रतिबिम्बित पक्ष पर लगी पत्ताकाँची की, नलन अन्धकार युक्त मार्ग में मणि कणों के बिज्जू की मुख का तरंगित, हरिण वादि के चिह्न हैं, वक्ता कुछ अन्य हैं, इस प्रकार कहते हैं। जहाँ चन्द्रमा के पक्षों की कन्दराओं में से मकरतमणि की किरणें निकलती रहती हैं, स्वर्गीय गंगा की लहरों से कोई समुद्र में गिरती है एवं वाकाशमार्ग में विचरण करने वाली सूर्य के छोटे पास की प्राप्ति से उनको बचाने का प्रयत्न करते रहते हैं। जहाँ स्थित उपानों में बुझों की लालाओं पर प्रपरी का समुद्र दिशाओं को मलिन कर रहा होगा, एवं सोपान का अग्रभाग स्फटिक मणियाँ से प्रतिबिम्बित होकर चमक रहा होगा। इसके अग्रभाग में स्थित मणिगृह में नित्य वक्ता

प्रिया के साथ प्रेमासाध में लीन, नत- पद की धारण किये हुए, स्फटिक
 दीवारों पर प्रतिबिम्बित नव वस्त्रधारी के प्रतिबिम्ब को देखकर तुम
 सज्जित होंगे तथा प्रकृति के कण भाग को देखकर तुम्हारी रेशा लगेना मानी
 कामदेव ने धनुष में लगी प्रत्येका की हंस - बंध के समान फेंक दिया हो,
 नेत्र का अन्तभाग मानी कम्प की कोमलता तथा शीघ्र्य की धारण कर
 रहा हो । मस्तक के बिसरे केशों पर मानी प्रमरी ने मुबार करना बौद्ध
 दिया हो । बर्हा हरित वर्ण की मणियाँ से निर्मित सितरों वाली
 अट्टालिकायें चारों ओर से विपुल रत्न भव लण्डों से वाष्पादित तथा स्वर्ण-
 बटित सितरों से सुशोभित होंगी । बर्हा स्थित विष्णु मंदिर के चारों ओर
 मेरी प्रिया का " पारवकर " नाम से प्रसिद्ध घर है, जिसकी दीवारें रत्न
 मणियाँ से बद्धित होंगी । उसी के मध्य में स्वर्ण निर्मित महल में समृद्धि
 की देवी लक्ष्मी कम्प परवाह्य होकर नृत्य करती हुई सुशोभित होंगी ।
 तत्पश्चात् वह अपनी प्रिया की चारित्रिक विशेषताओं की बतलाती हुए
 कहता है- महाभाग्या, कामदेव के मुखाब्जों के पराक्रम के कारण प्रसिद्ध
 भाग्य, धन तथा समृद्धि का समूह रत्न क्रीडित इस तात्त्विक ज्ञानादि गुण
 उसमें हैं। मेरी प्रिया के गृह का अलास्य स्फटिक मणि के समान स्वच्छ
 क्ल से पूर्ण होगा, शीघ्रान मार्ग लाभ रत्न के कारण सुशोभित होगा,
 निरन्तर मिलती हुई सूर्य की कम्प समुद्रय प्रतिबिम्ब बनाती हुई ही तुम्हारी
 मूर्ति होंगी । ऐसे सरोवर में जब ऐसी स्नान के लिए जाती है तब राक्षस
 उसी गति की कला को सीखने के लिए प्रतीक्षा करते रहते हैं। इसके तट
 पर स्थित , वायुमण्डलों की ताताओं के पल्लवों का शवन करी हुए, समीप
 स्थित भुंकी हुई पाधवी की कोमल सतहों हम दोनों के वैवाहिक सम्बन्ध की
 सादर बौद्धती हुई प्रतीत होती है। इसके निकट ही परवत मणि के तट भाग

में बम्पक वृद्धा से युक्त स्वर्णमय वातवात से युक्त, जल से पूर्ण स्वर्ण ताई है, जो हिमकणों से पूर्ण होकर समस्त मूल प्रवेश में स्थित है। उस ताई में नायिका की देह तता के वर्ण के समान पुष्प उत्पन्न होती है जो निरन्तर उसकी मुस्कराहट की कामना करती रहती हैं। वहाँ के बन्दन की बाटिका सर्पों से युक्त होगी, वृद्धों की छाया के नीचे स्थिति हुए मधुरों के समूह नृत्य करती हुए झीझा कर रहे होंगे। इसके समीप प्रेमरिपों की कन-मनाहट से युक्त कृष्णक वृद्धा होंगे जो बार बार कत्ती के प्रेम से हरिणनयनी नायिका के कर कपलों का स्पर्श कर रहे होंगे।

हे कोकिल ! यदि परिकर्षकपद्मपुष्पों की शय्या पर उसकी न देख सकी तो इन्द्रनील मणियाँ से बहित दीवारों में भरी प्रिया उसी प्रकार दिताई देगी जिस प्रकार बर्षा के गरमों हुए खाम बर्षा वाली मेघ में विद्युत की लीन पतली रेखा दिताई देती है। वह नैर्गुण की वस्तु गुलिका है, विधाता की सृष्टि का सार तत्त्व है, बम्पमा की किरणों का जो प्रथम क्षेत्र है, वही भरी प्रिया का सौन्दर्य है। त्रिभुवनों में सुशोभित शक्तिशाली कामदेव की ध्वजा का स्वर्ण निर्मित दण्ड है- वही मेरा वृद्धा जीवन है। उसकी दृष्टि मूल के समान सज्जावल नीचे झुकी हुई होगी, भ्रष्टतम तम के गर्व की हरण कर रहे होंगे, हाथ कल्पवृद्ध के किसलय की सामर्थ्य की नहीं सहन कर रहे होंगे तथा बाणी पैम स्वर में वाद्यावस्था की मैत्री की धारण कर रही होगी। उसका पुत्र यदि बम्प-किरण की क्रांति के समान है, तो वह स्वर्ण की भी प्रचित किये हुए है, जधर बिम्बों की जो मधुरता, वह माध्वीलता के समान कट भी है, उसका शरीर मासली तता के समान लघु होने पर भी सौख्यत् दुह है। उसका जघन प्रवेश स्वर्णकवली स्तम्भ के समान होने पर भी विजय स्व स्थूल रूप में भी विद्यमान है। दुर्भाग्य-

वस्तु पुनः वैसे प्रणाली पुनः के परितः में रहने पर, प्रणाली की उत्कर्षावस्था एक एक दिन के रूप के समान प्रतीत हो रहे हैं, प्रकृत विरह वस्तु उत्कर्षावस्था होती हुई वह कोमलानी पदारीयतु विन्म स्वयं प्रचिन्तित होनी । भी वियोग में वह सर्व विन्मिन्त अवस्था में गण्ड-स्थल पर हाथ रहे बेठी होनी । कस्त के स्थान पर कर- किसलय की ही कर्णाभुञ्जण बना रही होनी । स्कान्त में दीर्घ निश्वासा की होद रही होनी, मुनि मय है कि भी वियोग में उसी तारी सदस्य पुष्प माता की त्याग कर उसके स्थान पर कुमाता को धारण कर रही होनी । समस्त बाधुञ्जणों के त्यागने पर भी वह उस कटिबुज को धारण कर रही होनी किसी की वही वही हाथों से तार में पिरोकर दीर्घ मुक्तामाता बनाईगी ।

भी पुनः बापिल लौट जाने की बातका के नक्षत्र ने ही बाती वह धर उधर तार तक जाने के कारण उसके दोनों कस्तकी मरणा वेदना दे रहे होंगे , जिन चरणों की वह इच्छित वस्तुओं को पेर माने में प्रकृत करती थी, वह चरण इस समय दण्डवत् प्रणाम करवा रहे हैं। यद्यपि पुष्पता के कष्ट के कारण उसका शरीर बल्लरी के समान दुर्बल हो जाने पर भी, उसका सौन्दर्य तुम्हें उसी प्रकार दिगुणित प्रतीत होगा जिस प्रकार अग्नि में तपानेपर स्वर्ण की मात्रा कम होने पर भी उसमें निरन्तर कणकाकट उत्पन्न हो जाती है। उसके केशों की कर्तक पूर से पूरित होंगी, नेत्रों से निरन्तर कुधारा प्रवाहित हो रही होनी , वदाल्य पर कस्तनास का बाधुञ्जण धारण करने के कारण बस्य मलिन हो रहे होंगे , विद्याप करते हुए ही वही बहुमूल्य समय को व्यतीत कर

रही होगी। हे कोकिल ! तुम बाग़ बूटा पर विनाम करने के पश्चात् पीधों के केशों का सेवन करके तुम उस सुग्ध करने वाली सुन्दरी की देखोगी, जो पल्लव फलित है जानेवाला शीतल समीर से नम्रतापूर्ण है सन्देश की प्रेमी और उससे वह प्रकार प्रार्थना करेगी- मेरे कठोर कुवली प्रिय है मिल कर, उसके समाचारों से मुझे तीव्र ही अलग करायें।

चन्दन तथा हिमकण के मिश्रण का सेप क्या नर्मी को शान्त करने वाला नहीं होता ? क्या चन्द शीतल करने वाली पौष की वायु क्या सुकर होती है ? वह प्रकार सतियों के प्रकृति हृदं मेरी प्रिया के चित्त के तुम धान्यवता देना। पल्लवाक्षत है जाने वाली शीतल वायु के कमरे में प्रविष्ट हो जाने पर, सख्त नेत्री वाली वह अपनी शैविकाओं को कमरे के द्वार पट्टों को बन्द करने के लिए आदेश दे रही होगी एवं कामदेव से मय्यति होकर शिवजी के नाम का उच्चारण कर रही होगी। शैविकाओं सहित विवशासा में प्रवेश करके, अपने प्रिय को अपनी चरणों पर गिरा देकर, क्षु-पूर्ण नेत्री वाली वह दोनों भुजाओं से कण्ठ आसिन्न कर कह रही होगी- हे प्रिय चरणों पर से उठिये, मैं आपके कूट नहीं हूँ।

मण्डस्थल पर गिर रही पृथ्वी कलकों से आच्छन्न अपने मुख की, शुद्ध स्फटिक मणियों द्वारा निर्मित भित्ति में प्रतिबिम्ब देकर, मुख की मेघ लम्बाई से आच्छन्न चन्द्रमा समान कर, मय्यति होकर सतियों के प्रकृति है : पर के अन्दर वह चन्द्रमा कौन से वाया है ? कारुण्य-निक दृष्टि में वह मुझे आसिन्नबद्ध करती हृदं गीद में सुता रही होगी। दक्ष और स्थित पतिर बूटा पर कौर की बाणी की सुन कर मित्र के

जागमन कर उठी हौने के कारण बाया नेत्र स्फुरित हो रहा है। एवं विस्फोट से नियोजनमय उत्प्लाव से हृदय उद्विग्न हो ही गया है। कौकिल स्वर के कर्ण पशुर गायन को सुन कर है प्रीतः उससे मिलने की उत्कण्ठा में मेरा हित लगे हुआ है एवं इस बीच में पुनर्विजन की वाता से स्वयं की धाम्प्यना मिलती है, क्योंकि नियोजनस्थानों-स्त्रियों की दृष्टि कुछ इसी प्रकार धीकती रहती है। दुर्भाग्यवश पुनः प्रिय से विमुक्त हुईं उसके पास जब तुम्हारे पैसा दूत पहुँचा तो निश्चित ही उसका हृदय स्पन्दित होगा। रात्रि के अन्धकार में उसके मुँह की देखकर तुम्हारी ऐसा प्रतीत होगा, मानो उसने तुम्हारे सम्बन्ध पर ध्यान न दिया हो।

कतः दीपक तक समस्त दैनिक धार्मिक कार्य-
कलापों के पश्चात् मणि- निर्मित दीवारों वाले भवन के तिसर पर विजय कर रही मेरी प्रिया की, मेरे उदित को सुनाना। बाग्न वृत्त की कोमल मंगरियों की शीत कर मेरे समीप क्या यह कौकिल की कृतता का उदित देने के लिए आयी है ? ऐसा विचार करते हुए वह सेविका द्वारा लाये गये जल से मेरीं की धोकर, तुम्हारी उच समय तक देखती जब तक कि तुम मेरे उदित को कहना प्रारम्भ नहीं कर दोगे। तदनन्तर तुम मेरे उदित की स्पष्ट बाणी में इस प्रकार कहना प्रारम्भ कर देना -

हे सुमुनि ! तुम्हारे जीवन के लिए यह उदित हम है, ये एक प्रती हैं, तुम्हारे प्रियतम के समीप से आ रही हैं। बीस प्रेस में तुम्हारा प्रियतम कुछ मंगल है तथा तुम्हारी कृतता की प्रहं रहा है। तुम्हारे लज बच्चों को समाप्त करने से पूर्व ही वह तुम पर ताणिक दृष्टि डाल कर प्रसन्न होगी एवं कुपुर्ण नेत्रों से तुम्हारी देख कर कहणी -

कही, कही, बार-बार कभी हुर मुझ में प्रियतम के लीक से ज्वलत करावी, उस प्रकारस्मित हास्यवाली होकर वह तुम्हारा वतिधि-वत्कार करेगी एवं फिर फिर अनित पति के लीक को सुनकर प्रेम के कारण मत्त होती हुई उसको बार बार सुनने की इच्छा करेगी।

हे सुन्दरी ! मेरी वास्तव ज्ञानेन्द्रियाँ ने अवर्णनीय दुःख की अवस्था सहन की है, जिसकी तुम समझ भी नहीं सकती, लेकिन चित्त भाग्यशाली है, जो तुम्हारे बिना भी रात-दिन दूसरे कार्यों में व्यस्त रहता है। इन सबके बीचमें निश्चय ही एक भाग्य ही जन्मता है। टकराती हुई तीव्र-समीर के जाने से बरौबर में विकसित वह क्षुब्धिनी के पुष्पाँ के आन्दोलित होने पर प्रसरियाँ नृत्य कस्तो हुई ही प्रतीत होतीं। तुम्हारे वियोग के कारण मैं प्रत्येक रात्रि में याचना रूपी बरौबर में विकसित होता रहता हूँ, जबकि समस्त संसार गहन शक्ति में लीक हुए ज्ञान्त रहता है। तब मैं विलाप करता रहता हूँ। जब दुःख में दीर्घ स्थाय रहता हूँ, तो प्रेम स्थित ही जाता है, कलकों का झुलझुल ही केवल उस घटना की जानती हैं। मोहबलित में, स्तब्ध में विहार करता रहता हूँ, मेरा धर्म नष्ट ही गया है। जड़ता बागड है, उत्पाद फूट होता है, एवं पति प्रष्ट होगई है, जिसकी मैं नहीं जानता, केवल कामदेव के द्वारा ही जाना जा सकता है, जो समझ में वाच-वाच प्रस्ता रहता है।

जगत् कामदेव काम बाणों की शीदता हुआ सर्वत्र व्याप्त है, बिना कुछ भी साथ तथा बिना साथी हुर में अपना समय व्यतीत करता रहता है।

इस बसन्त काल में फल्य फलन के स्पर्श से बान्धी-
 तित एवं प्रसर गुणन से कुल्ल भुम्बर बारीली लता बल्लरियां तथा दलिनणी
 शीतल फलन पुष्पन करती हुई हैं प्रिया । तुम्हारे हाथ का स्मरण दिलाती
 रहती हैं, और कुछ उसी प्रकार की ध्वनि उत्पन्न हो रही है। किसी भी
 द्वारा उपभोग काल में तुम्हारे किसलय स्त्री बधर-विम्ब का पुष्पन करने से
 उत्पन्न होती थी । हे सुन्दरी । शीतल शान्त फलन, जो कि वृक्ष पुष्पों
 के कारण सुगन्ध को प्राप्त हो रही है, जिस किसी प्रकार में सदन कर
 रहा है। मणियों से निर्मित गवाणों के समीप से जाते हुए तुम्हारी उस
 समय की गति के विषय में कल्पना कर रहा हूँ, जब तुम्हारे घने बालों
 की लट्टें कन्धों पर गिरती थीं, और तब तुम कमर व नितम्बों के बस्त्रों
 को हाथ से फँस लेती थीं । हे हरिण के समान नेत्रों वाली । तब हे-
 मेरा वित्त तरुण कृष्णक की तरह कामना करता है, जो किसी प्रकार
 कृत्यक्रि संताप्त होकर विरहवत्, कृत्यन्त दीर्घ रात्रि को भ्रमण करते हुए
 हो जलती कर देता है, किन्तु पूर्व दिशा में उदित हुए सूर्य की स्वतर्पण
 का किरणों को देखकर कृष्णक शीघ्रता एवं उत्कंठा से फलन कर अपनी
 प्रिया (कृष्णको) को वार्त्तिगन्ध करता है, जो तत्काल भरे हृदय में
 रंघ्या उत्पन्न होने लगती है।

तुम्हारी किसी सुगन्धहास्य ध्वनि उत्पन्न होने
 पर मैं अपनी गर्दन को जब ऊपर उठाता हूँ, तब नेत्र निरन्तर उसी दिशा
 की तरफ देखती हैं जहाँ पर तुम घुमती थीं । तुम्हारे द्वारा स्पर्श किये गये
 अपने अवयवों को स्नेह से फँसता हूँ, क्योंकि वह तुम्हारे द्वारा स्पर्श किये
 हुए थे । हे कान्ता । मैं अपने प्राणों को केवल स्त्रीतिर धारण कर रहा
 हूँ, क्योंकि तुम पुष्प प्राणों से अधिक प्रिय हो ।

इसी पृथ्वी पर मैं और तुम साथ साथ रहते हुए पारस्परिक स्पर्श ज्ञान द्वारा वासिगनबद्ध होते थे, रात्रि में चन्द्र-किरणों की ज्योत्स्ना में स्नान करते हुए एक साथ विहार करते रहते थे ज़्यादा। एक कठोर बियोग में केवल भावना कभी कल्पवल्ली के सहारे ही मैं जीवित हूँ, और किसी न किसी प्रकार धर्म धारण कर रहा हूँ। कल्पना में विचरण करते हुए तुम्हो में अपनी गोद में बिठा कर प्रेमपूर्ण प्रसाद वासिगन बद्ध कर रहा हूँ।

हे शुभ्र ! मेरा हृदय कामदेव के बाण भेदन से चतुर्द हो गया है, एवं जीक किन्हीं उत्पन्न होने से यद्यपि मेरा धर्म नष्ट हो गया है, अवस्था की गति दागण हो गई है, समय के व्यतीत होने के साथ साथ कामाग्नि न केवल बढ़ रही है, अपितु प्रत्येक समय प्रज्ज्वलित होकर दहकती रहती है। निश्चय ही विरहावस्था में जीवित रहने के लिए कोई उपयुक्त उपाय नहीं होता, फिर भी मैं निरन्तर कल्पना का आश्रय लेकर जीवित हूँ। हे निरुपम गुणवाली/तुम स्नान जादि अन्य कार्यों के लिए की गई वस्तुओं की प्राप्ति की उपेक्षा नहीं करना। क्योंकि हम दोनों ने देवी पार्वती की कृपा से विरह कभी शहर समभग पार कर लिया है। शेष दो मास का ही और कष्ट है, फिर तो हमारा मिलन निश्चित ही है। फिर तो हम लोग परस्पर नवीन दृष्टि की धारण करने वाले प्रेम गर्भ की समाप्ति पर, धूप निकलने पर सुगंधित हुए अपने ऊँचे प्रासाद में प्रणय झीड़ा करते हुए अपने दिनों की व्यतीत करेंगे।

हे नवल नैगीवाली ! क्या तुम्हें स्मरण है कि एक बार तुम्हीं नदी में स्नान करते समय कैशों में लगे पुष्प प्रकाशित हो

गये थे, नेत्र धमल एवं कपूर बिम्ब जोष्ठ स्थित हो गये थे और तब कपर तक के पानी के बीच में लड़ी हुई तुम्हारी उपस्थितियों ने स्नान करने के बाद कफाक मेरी और देखा , तब हम दोनों ने पुनः अन्त में गीता लगाया था।

उपान में स्थित उत्तम पदार वृत्त को देखकर बलिधि- उत्कार के कारण जारीही लताये, वृत्तों की लाताओं के साथ आतिगनबद्ध थी, तब प्रकृष्टि हुए कपूरों वाली होकर तुम इष्टि मोद कर कोप के साथ , कुरुणाँ से युक्त प्रकृष्टि वाले तुम को बद्ध करके तुमने तुम पर ताणिक इष्टि फेंकी थी ।

प्रणयस्वी शोध को तुम्हारे हृदय में प्रतिबिम्बित हो रहा था, वास्तविकता से अनभिज्ञ तुम्हारी सेविकाओं ने नन्दन के लेफ्ट द्वारा सान्त्वना देने का प्रयास किया था, तब तुम्हारी सत्वियों ने मुस्क-राष्ट से हस्तदीप करती हुए कहा कि बदस्थल पर नन्दन का लेफ्ट नहीं लगायी, उस समय तुम कुछ लज्जित एवं पबराई हुई सी दिशाई दे रहे थे ।

जब उपान में स्थित पुष्पों को तुम्हारे कोपल किसलय स्वी हाथों ने स्पर्शित करके, मेरे समीप लड़े होकर , किस प्रकार प्रसरियों तुम्हारे कमलस्वी तुम को तुगन्ध को मानी पीना चाहती हैं, उन्ही प्रकार तुम्हारी नतुर सत्वियों ने कुछ समय के लिए बपने कर किसलय द्वारा बपने नेओं को इस प्रकार बन्द कर लिया, मानो पुष्पों के पराग से मयमीत हो रही हों ।

इस प्रकार मेरी कुशलता को तुम कन्धी प्रकार

से जानती हो, तब भी एक बात ध्यान देने -

जब सभी की अनुमति- विनय स्वीकार कर देने पर फोरमल हेतु एक राजीस रह गया था तो काम की लज्जा वाला जब वह उस हठात् अपनी सहचरीका चुम्बन से रहा था, तब उस समय तुम्ही कुछ लज्जा के साथ मुझकी देता था ।

ऐसी अनुमति प्राप्त है- विरहावस्था में प्रेम टूट जाता है, लेकिन तुम्ही सम्बद्ध मेरा प्रेम तो तुम्हारे लिए सीगुना बन गया है, तब समागम में एक प्रकार से विभिन्नता है, लेकिन जब तुम जैसी ही जाती हो, तब निश्चय ही तीनों लोक सम्मिल्य होकर परस्पर मिल जाती हैं।

हे प्रियमित्र ! मुझ निराश माहों के तुम सदैव- प्रवण कार्य को करो, तुम कल्याणसाक्षी पुरुषों में ऐसा करने से क्षणी माने जावोगे । निश्चय ही तुम परम कल्याणी हो, क्योंकि दूसरों के जीवन को भरण करने वाली हो, दूसरों का भरण पोषण करने के कारण तुम पदिराजों में क्षणी सर्व श्रेष्ठ समीत जावोगे । कामदेव राज्य की प्रीति के अनुकूल तुम्हें एकमात्र उपयुक्त प्रीति होती हो, जावी । विभिन्न विज्ञानों में स्वच्छापूर्वक विचारण करो । मैं जो तुम्हें जीवन स्थापन के लिए प्रार्थना की है, उसको सम्पादित करते हुए तुम सब कार्य को करो ।

तुम्हारा अपनी प्रिया से सब प्रकार का विप्रयोग का प्रसंग पुनः न उपस्थित हो जाय । सब प्रकार की क्लेश के प्रति शुभ-कामना प्रकट करते हुए ही काव्य की समाप्ति हो जाती है।

कोकिल-क्षिति काव्य में वर्णित मार्ग- निर्दिष्ट

क्षिति काव्यों के रित्य विधान से यह स्पष्ट है कि - इन काव्यों में द्रुत के एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने के व्यापक से कवि अपनी काव्य में मार्ग का निर्दिष्ट करता है। इन काव्यों में वर्णित मार्ग निर्दिष्ट क्षिति काव्यों का महत्वपूर्ण भाग माना जाता है। कवि ने इस प्रसंग में काँची नगरी से पूर्ण नदी के दक्षिण तट पर स्थित कनक नदी तक के मध्यवर्ती मार्ग का कवित्वपूर्ण वर्णन किया है।

काँची के निकट, कन्या नदी के तट पर स्थित उषान से कोकिल की यात्रा आरम्भ होती है। मार्ग में श्री कायासी, श्रीविष्णु, कामपोठ तथा महादेव जी के दर्शनीपरान्त काँची से पश्चिम की ओर, ज्योतिष्पु नदी के किनारे का उत्तीर्ण किया है। यहाँ से दक्षिण की ओर जाने पर ब्राह्मणों के अग्रहार (साटपुर) व नील प्रसंग में स्थित शिवजी के निवास स्थल चित्त दीप, उत्पलवातु सम्पन्न की पार कर कावेरी नदी तथा इसके तट पर स्थित हीसल दीप में पहुँचने का निर्दिष्ट दिया है। हीसल से साह्य पर्वत होते हुए केरल में वाह्म्यमी नदी तट पर महादेव जी का भक्तकाली के दर्शन करने के बाद मुहूर्ती राजाजी की राजधानी का उत्तीर्ण किया है। यहाँ से दक्षिण की ओर जाने के आवश्यक होने पर भी पश्चिम की ओर बढ़ने का ही कोकिल की परामर्श दिया है। मार्ग में महादेव जी का पैदल, सम्पद्ग्राम तथा यहाँ के प्रसिद्ध जगन्नाथ विमानों के दर्शन कर उपनन्तर तम्बर प्रसंग में बास कृष्ण के दर्शन करते हुए दक्षिण दिशा की ओर बढ़ने पर कोस प्रसंग (कोल्टुनाद) जाने का उत्तीर्ण किया है।

यहाँ से बहुत दूर होते हुए कुम्हट की नगर
 तबानन्दर प्रकाश प्रीति में स्वीकारण्य के निकट स्थित, कुम्हट के दर्शन करने
 के बाद निम्न नदी की पार करते हुए, नैत्र नारायण की प्राथम्य के
 पवित्र स्थल जाने का आवेग दिया है। यहाँ से कुछ पूर्व की ओर गणेश
 में महर्षि पञ्चर के आश्रम के देखने के पश्चात्, कुम्हट की महानदी की
 तथा उसके समीप ही स्वर्ण भवन में पार्वती की उपासना करते हुए, शीघ्र
 ग्राम जाने का उत्सुक किया है।

यहाँ भीष्मपुत्र की के दर्शन करने के बाद जाने
 करने पर भीष्मपुत्र नगर में काशी की के मंदिर की दर्शन के बाद शीघ्र-
 पुरी की देखते हुए पूर्ण नदी की पार करते, दक्षिण की ओर बसन्त
 नगर की देखने का उत्सुक किया गया है। इस (केम्पकोटम्) नगरी
 में स्थित विष्णु जीव से दक्षिण की ओर जाने पर तुम्हारा नन्दन
 स्थान ' मारुकर गृह ' है।

नतः इस प्रयोग में वर्णित, मार्ग-निर्देश का
 विविध स्थलों की केवल सूची ही प्रस्तुत नहीं करता, अपितु तत्सम्बन्ध
 का एक सङ्क्षेप चित्र का प्रस्तुत करता है।

पंचम अध्याय

साहित्यिक सर्वा

- १- एष निष्पत्ति
- २- भाषा अभिव्यक्ति
- ३- काव्य एवम शैली
- ४- अलंकारिक प्रयोग
- ५- कल्प योजना
- ६- लोकोक्तिर्वा का प्रयोग
- ७- प्रकृति चित्रण

रस

सैवश काव्यों का वन्द्य विरह वनित विप्रसम्भ
शृंगार रस की पृष्ठभूमि में ही होता है। अतः विप्रसम्भ रस सैवश काव्यों
का जीवन माना जाता है।

मेघदूतादि अन्य सैवश काव्यों की भाँति विप्र-
सम्भ शृंगार रस में ही इस काव्य का निरूपण किया गया है।

शृंगार का सूत्राधार रति है। जो जगत् के
समस्त प्राणिमात्र में व्याप्त है। यह मानव मन की सुनीप्त भावामिव्यक्ति
का स्त्रीक है, जिसकी कवि ने अपनी सुलिका द्वारा विविध रंग देकर,
अत्यधिक सुरम्य रूप में चित्रित करके पाठकों के काव्यास्वादन को दिगु-
णित करने का प्रयास किया है।

को० सं० में कवि उदण्ड ने शृंगार के संयोग और
वियोग दोनों ही पक्षों का सुन्दर चित्रण किया है। किन्तु काव्य में
विप्रसम्भ-शृंगार-रस प्रधान होने के कारण संयोग-शृंगार का चित्रण तो
नगर ^१कई वर्णन ^२जलक्रीड़ा एवं ^३सुरत क्रीड़ा इत्यादि अन्य प्रसंगों
में ही चित्रित हुआ है।

इन स्थलों पर संयोग शृंगार की अभिव्यक्ति

१- कोकिल सैवश - २। ३, ७, ६, १०

२- वही १। २४, २। ६२

३- वही १। ३०, ३७, ४८

कराने में कवि की पूर्ण सफलता मिली है।

कुल्लूटडोड नगर वर्णन प्रसंग में कव्यस्त सख्य
स्व से संयोग सुनार चित्रित हो रहा है :

‘ भट्ट भट्ट नवनवधुधासाहित्यं नव शीघ्र ।
शीघ्र- शीघ्र सुरभिःसुमेः कल्पितं केचित्कल्पम् ।
सत्ये सत्ये स्वपरित्त कापिलिकाम्पसुम्प
सुम्प सुम्प स तनु विहारं विरमवीरो मनीषुः ।’
(१।६५)

वन- विहार के कल्पित भी संयोग सुनार के सुरम्य चित्र चित्रित हुए
हैं। कवि ने सुनातिल शीघ्रता का कदा सुन्दर वर्णन किया है।

‘ सुम्पं विष्वाधरमित नव पल्लव शीघ्रम् ।
प्राप्तास्तित्यः स्तन नव नव कोरु कामवारी ।
भीकतासि त्वं कपपि समयं तत्र माकन्दवल्लीः
काम्पारागे सति विकसितः पुष्पास्त्यस्तुषीष्टे ॥’
(१।३३)

कहीं कहीं कव्य वर्णनों में भी कव्यस्त सख्य
स्व से संयोग सुनार चित्रित हो रहा है।

इस प्रकार प्रस्तुत कतिपय उदाहरणों की
देखी से यह प्रतीत होता है कि कवि की संयोग सुनार चित्रण करने में
पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

१- को० सं० १। ३१ , २। १७

२- वही १।४८ , ७३ , ८३

वही २। २३ , ६५- ६६

संयोग कृंगार रस का विनय तो कवि ने
बृह ही स्वरों पर विनियत किया है, क्योंकि यह संयोग काव्य पूर्णतः
विप्रलम्भ कृंगार रस से परिपूर्ण है।

काव्य में जहाँ कुराग तो बसि उत्कट रस
में प्रकट होता है किन्तु प्रिय से मिलन नहीं हो पाता, वहाँ वियोग
उत्पन्न हो जाता है। वियोग कृंगार के अन्तर्गत जाने वाली सपस्त मा-
पताली का विनय भी गम्भीरता से हुआ है। इसको अभिव्यक्त करने में
कवि को पूर्ण सफलता भी प्राप्त हुई है।

वाचार्थ विश्वनाथ ने विप्रलम्भ कृंगार के चार
भेद बताये हैं। पूर्वराग, मान, प्रवास और कलण ।

कवि उद्बुध ने को० सं० में वर्णित विरह
प्रयोगों में विप्रलम्भ कृंगार की तृतीय अवस्था प्रवास को ही विनियत किया
है। जिसमें कार्यवत्, शापवत्, कथा सम्भवत् नायक के किसी अन्य वेश में
जसे जाने को प्रवास कहते हैं । किसी भी कारणवत् नायक को किसी
अन्य वेश में प्रवास करना पड़ता है।

को० सं० का वारम्भ ही वियोग की पृष्ठभूमि
से होता है। जिसमें कोई प्रेमी अपनी प्रिया के साथ तन्य करता हुआ
प्रातःकाह में स्वयं को अपनी पत्नी से वियुक्त पाता है।

१- स च पूर्वराग मान प्रवास कलणात्मकस्वरुधास्वात् ।

(भा० व० अ० १८७)

२- प्रवासी भिन्नदेशित्वं कार्यान्वयानि संप्रदात् ॥ (भा० व० अ० २०४)

३- कोविद संक्षेप १।१

काव्य के दूसरे स्तीक^१ में नायक वाकालापाणी को भुनता है, जिसके द्वारा उसे प्रवास के कारण की सूचना मिलती है।
 अतः प्रवास विप्रस्थ का अन्तिम कारण 'सम्भवतः' यहाँ प्रकट होता है।

एक अद्वैत काव्य के तृतीय स्तीक^२ में 'पाँच मास' तक के प्रवास का उल्लेख मिलता है। पाँच मास की अवधि तक नायिका के विरह में नायक की स्मृति की दम्पयता बनी रहती है, फलस्वरूप अंततः कुछ विरह अनित्य स्वर उत्पन्न होता है, अतः वियोग की प्रतीति होने स्वाभाविक ही है।

प्रवास में नायक अथवा नायिका की दस काम दशार्थ विरचनाय ने अपनी साहित्य दर्पण में बताया है। ये दशार्थ काव्य

१- स्वामा निन्युः सुभग । तस्मिन् तीलया नोत्तरेण्यी
 दृष्टं देवं वल्लभापुतः संभ्रान्त्यो विमानैः ।
 वनामुख्यमपि भगवतीर्षिकीकृत्या धर्षिताः ।
 सुभाषित्यं च पुनरुपसृष्टं त्वोन्मि वाणीम् ॥

- कौ० दृ० १।२

२- दोषे वास्मिन् सख्यविपर्ययं भवति येन मासा-
 नाधीपारक्षेत् प्रियजनवियोगादित्थं न ते स्यात् ॥

(१- ३)

३- वीच्यसीर्ष्व तापः पाप्मता कुतस्तदुत्तराणि ।
 कृतिः स्वादनाहमस्तम्भयोन्मादमुर्ध्वनाः ।
 मुतिरपि हि प्रमाज्जया वतस्मरवता ॥

- वा० दृ० ३। २०५-२०६

में कहीं कहीं उपलब्ध हुए हैं, जका निर्देश भी आवश्यक है। इन्हीं अवस्थाओं के आधार पर समुचित प्रकार से प्रस्तुत काव्य का वियोज वर्णन प्रस्तुत किया जा सकता है।

विरह की सभी काम्यताओं का कैसा शक्ति कार्त्तव्यिक मनीषैज्ञानिक एवं एवागीण विवर्णन एवं धीरे काव्य में वर्णित है, कैसा मेघदूत की कीद कर अन्यत्र देखने में नहीं आता ।

एक काव्य में कवि ने वसन्त-वर्णन-प्रसंग में प्रतापवत विद्युत्त हुए नायक एवं नायिका के विरह का रम्य चित्र वर्णित किया है। वसन्त का आगमन होते ही सभी वृक्षा एवं पुष्प विकसित हो जाते हैं। बागमृदा की मीसरियाँ एवं कोयल की कूहु कूहु ध्वनि सुनाई देने लगती है। ऐसे वातावरण में प्रतापी नायक का मन व्याकुल हो उठता है। उसे अपनी प्रिया की स्मृति हो उठती है। एक प्रसंग में निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य है :

“ वैशारम्भं समुचितमभुजितापा मिराम् ।

कृताहंभूरास्नयनं रहिर्ल कोकिर्ल संवत्सं । ” (१-४)

“ तं वृजन्तं वसन्तधुर्या वैजयन्तानर्भगया

कान्तातापस्मरण विमलः किंविवा रादुषित्य ।

वन्तवा मेघविहिङ्गुटपुलै रज्यम्कुप्रवाहै-

वांवाश्वाधः स्फुटमिति मिरा भाव्ययाधैविरेत ॥

(१-५)

एक द्वितीय श्लोक में वाप्र वृक्षा पर कुहूकुही

दुर्लभ कोकिल की देकर नायक को तत्काल अपनी प्रिया की स्मृति बाधत ही उठती है, वही विरही नायक कोकिल के समस्त ही विज्ञाप करता प्रारम्भ कर देता है। इस श्लोक के द्वारा विप्रलम्भ की उन्मादावस्था की भूकना होती है एवं निश्वास, उच्छ्वास इत्यादि क्रियाएँ सम्पन्न हो रही हैं। कवि ने विरही सुन्दर भाव भंगिमा के साथ प्रवास अन्य विज्ञापवस्तुओं- कथि, कृतता, मोह, लयन इत्यादि का अपनी कल्पना द्वारा विरह चित्रण प्रस्तुत किया है। यह पूर्ण ध्वस्त काव्य, विप्रलम्भ गुंजार एवं पूर्ण एक ध्वस्त ध्वस्त काव्य है।

विरही नायक कोकिल से अपनी प्रिया की कल्पना एवं दलीय अवस्था के विषय में चिन्तन करता हुआ करता है-

‘तत्र प्रत्यक्षलिखितसिमासीसिमासाकमानां ।
बासाधनं निर्यापकृता मदिशोभनं दीनाम् ।
कस्याणीं वा कनक कवलीकम्बलीकोपलानीं
कम्बपानिं कवलिं कृत्स्नं निरुत्पन्नं उच्यते ।’ (१-१२)

कवि ने एक अन्य स्थल पर विरही नायक के कथि का कैसा मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है-

‘तत्सोन्ध्यापकृतकृतयो वा विसम्भस्व गन्तुं
बन्धुजाणाद् बहुवतिपदं नापरं त्वदिधानाम् ॥ (१।२०)

जो प्रथम में एक अन्य श्लोक भी दर्शनीय

है :

“ प्राप्नोम्येव प्रमत्तिविरिप्रभवावा निरुदये
 वातासीकस्तकमहचिरे मानवीये मयूते ।
 प्रस्वार्तु त्वं पुनरपि वसे प्रभेयाः प्रभाते
 स्वात्मवैतः सुसुप्तकृती त्वापुनानां पुताय ॥ ” (१-५६)

वह विरही प्रेमी अपनी प्रिया का स्मरण
 करता हुआ उसकी विरहावस्था की कल्पना कर चिंतित होता रहता
 है।

एक स्थल पर ग्रीष्म में ध्रुव की उज्ज्वल किरणों
 द्वारा अंतस्त बाह्य में विचरण करती दूर दक्षिणकाय ईर्षी से युक्त नदी
 की कल्पना मात्र से विरही नायक की अपनी प्रिया का स्मरण हो
 उठता है। वह कहता है :

“ तैवासीकस्तकमहचिरे मानवीये मयूते ।
 प्रोता काश्यं त्वमकि र्णीकंधरेण्येचु विन्धुः ।
 वाकीर्णास्यास्तकनिकरेः प्रोणि विप्रतिर्णापी
 मय्ये दीनं विरहवतया प्रेयसी भेदनुवायात् ॥
 (१-५५)

उपसृक्त श्लोक में स्मृति, चिन्ता तथा
 व्याधि इत्यादि काम वशाओं का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

कोशिल से अपनी प्रिया की विरहावस्था का
 वर्णन करते हुए विरही नायक कहता है :

“ अयं प्रायः प्रणयिनि मयि प्रीयति मान्यदीनात्

करणादिरेव विवर्धेपितृकण्ठमाना ।

संवायेत प्रकृतिरहीरेकित फेलाहुणी
मुहंभमंवरपत्ता नीलकण्ठीय सिन्हा ॥ (२-२५)

इस श्लोक में नायिका की मुन्हा, उन्हाद
ज्यादि कवस्थाओं का उल्लेख मिलता है।

तत्परत्वात् विरही प्रेमी उसकी विरहावस्था
का वर्णन करते हुए कहता है :

‘तस्मिन्मनसा भवति विर्यं वृन्त चिन्ताकृताया
गण्डम्यस्तः करकिंसलः कर्णवाहं वत्सः ॥ (२-२६)

इस श्लोक में प्रवास की उताप, बहानि,
चिन्ता आदि कवस्थाओं का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

पुनः विरही नायक अपनी प्रिया की विरहा-
वस्था का चिन्तन करते हुए कहता है कि - इस समय वह स्कान्त में दीर्घ
निश्वाहों की शीह रही होगी-

‘पश्यस्वपदः समवति वते । पर्यायि कयीः प्राह०
निष्प्राकृन्पयि तु विधिना वापृते इत्येति ।
अन्तर्वाङ्मयधुरणनिभृते साम्प्रतं ते मुना यत्ता
नेति धवस्तु किनकणिकादन्तुराम्पीदेवम् ॥ (२-२७)

विश्रीगवति उताप के कारण परी प्रिया ने

धारीं सदृश्य पुष्पी की माता की त्याग कर उसके स्थान पर निरन्तर
मेरी में बहु धारण कर रही होनी मोणी के भार के वह समय वह क्षिप्त
होनी एवं वास्तव्य को प्राप्त कर रही होनी तथा मेरे पुनः वापिस जाने
की वास्तव्य के बार बार द्वार तक जाती होनी -

“ वायाराम्नां यदभिगम्यार्त्तकया रजसाख्या
यातायातेः किञ्चयनिभी विहरकाः पादकम्पी ।
मिष्यामीनस्तनयधृष्टु प्रस्तुतं वन्द्य साध्या
सर्वं पादप्रणतिषु मया वन्द्य ध्यातवानि ॥

(२-३२)

इस श्लोक में नायिका की अधीस्ता , वस्त्रिस्ता
धृताप इत्यादि काम कलाओं का चित्रण उपलब्ध होता है।

एक अन्य स्थल पर नायक अपनी प्रिया की
विभिन्न विरह चेष्टाओं की भावपूर्ण ढंग से वर्णित करते हुए कहता है
कि :

“ पुष्पीरिणूनकनिकरे मित्रयोर्वाच्यपुर्
हस्ते गच्छेति विविक्तताहात्वात् स्तनाग्रे
मोण्या पापम मलिनमृण्णं वा वल्लभेन वन्दे
तयास्तमिदं विविक्तमिदं कालातिपातः ॥ ”

(२-३४)

प्रस्तुत श्लोक में कवि ने नायिका की विरक्ति
व्यवस्था का किन्ना मार्गिक एवं कठण चित्र प्रस्तुत किया है- प्रभावजन्य

विरहावस्था की विभिन्न काम बतायीं- निश्वास, उच्छ्वास, रोदन, धुमिलन , शरीर एवं वस्त्रों में मलिनता, बहक, कंठाप इत्यादि का स्पष्ट चित्र मिलता है।

तदनन्तर वह अपनी प्रिया की विभिन्न विरहात्मक चेष्टाओं की कल्पना करते हुए कहता है कि - प्रवासकाल्य विरह काल में मेरी प्रिया उन्मत्त सी हो गई होगी तथा उसे क्या-क्या एवं क्या-क्या का भव ज्ञान नहीं होगा :

‘प्राप्तासम्भा परिकरैः प्राप्य वा विप्रताप्तां
मुग्धास्वस्यास्वरणवतिर्न वेति तं मां निरीक्ष्य ।
स्सुस्निग्ध प्रिय । न कृपितास्मीति वाञ्छुकतायां
नाद्वारतेन प्रवसितकरा लब्धमाना स्तीमिः ॥’

(२-३८)

उपर्युक्त श्लोक में कवि ने विरहित नायिका की उन्माद अवस्था का कैसा कष्टना विषय उपस्थित किया है। ऐसी ही एक अन्य स्थल पर उन्मत्त नायिका धूसर कलकों से आवृत्य अपने मन्दगुह्य मुख को रुद्र स्फटिक मणियों द्वारा निर्मित मित्त धान में प्रतिबिम्बित कर उसको वह भव लज्हाँ से आवृत्य मन्दमा समझ कर, मय्यति होकर अपनी शक्तियों से प्रवृत्त है कि - घर के अन्दर यह मन्दमा किसी द्वारा लया गया है।

पुनः अपनी प्रिया के विरह की उन्मत्त अवस्था के विषय में कहना करता हुआ नायक कहता है : कारुणिक

दृष्टि में वह पुनः वास्तविकता कहती होगी।

अन्त में विभिन्न रूप निमित्तों से अपनी प्रिय के आनन्द की आशा लगा रही होगी।

निम्नलिखित दो स्तौतियाँ हैं- प्रिय का ध्यान कहती हुई विरहिणी प्रेम्सी की प्रेमी द्वारा की गई कल्पना की दृष्टि-

वक्षि ध्यातुं वाः सुकुपुष्पार्थं वक्षिणी पतिस्तुते ।
 वार्धं नैव स्फुरति सुचिरादुच्छ्वसित्यथ केतः ।
 किं वक्ष्यः वषण्मधुरो वायुः को क्लिप्तानां
 प्राणी-आशा यिति क्वचित् प्रातरामन्वते वा ॥

सुकता बीजाभ्युत्थनमिति श्रीलता विस्मिता वा
 तत्समासा स्फुरति परं हेतुरित्युचिता वा ।
 शोचन्ती मां वक्षिण्यया विप्रयोगासहिष्णुं
 स्त्रीणां चेष्टास्त्विति हि विरहीत्याहु विद्वन्मात्रेण ॥
 (२-४२-४३)

कवि ने नायिका की समस्त आशावन्धन काम-
 पलायों की निमित्त करने के पश्चात् नायक द्वारा को क्लिप्त के समान अपनी
 विभिन्न विरह अवस्था का कथा करण एवं पार्थिव पित्रण निम्नलिखित
 स्तौतियों में प्रस्तुत किया है :

अपनी प्रिया के विरह में नायक निरन्तर
 चिन्तित रहता है। अपनी विरहावस्था को निमित्त करते हुए नायक

अपनी संवेदित कल्प में कोकिल से कहता है :

“ के कलवाणाङ्गणि । तुम प्रिय सखरी को प्राप्त
न करती हुए वस्तु व्यस्त कल्या में अपना जीवन व्यतीत कर रहा हूँ, मेरी
बाह्य मानसिकता ने वर्णनीय दुःख की कल्या समझ ली है, जिसको
तुम समझ नहीं सकती लेकिन वित्तभाग्यशाली है, जो तुम्हारे बिना
भी दिन रात अन्य कार्यों में संलग्न रहता है। तत्परन्तु नायक ने पुनः
अपनी विरहावस्था का केषा कर्तव्य वित्त निष्पत्ति दो स्तोक में
प्रस्तुत किया है :

“ मायभूमिः कृपुणमनस्तर्ज्यमानस्य वीरे
रातृकाली सरसि तुलसी हा निनीतिनिशीथ ।
निद्रासूक्ष्मादि एतति स्वासन्तितावुष्णी मे
कृन्तन्तश्चटुलकी । कलवाकाः कलयाः ॥ ”

“ पीलावर्त विहरति धृतिर्वीर्यो जाड्यकीने
मात्सुन्मादो भ्रमति मतिरित्यादि सीहं न केचित्
वाणं तुम्हं परिहरणी न स्वप्न नापि तादृन्
कृत्स्नं वानात्कलुषगमी । केवर्तं कलवाणः ॥ ”

(२-५१-५२)

इन स्तोकों में कवि ने अपनी प्रिया के कारण
हुलिया नायक की समस्त विरह दशाओं क्या- रुदन, निश्वास, उच्छ्वास,
उन्माद, कथरिता, वरुणि सेवाप इत्यादि का स्पष्ट ज्ञेय मिलता है।

वसन्त ऋतु में उत्पन्न प्राकृतिक वस्तुओं की

देकर विरहीका चित्त में अपने अपने प्रिय का की स्मृति उत्पन्न वाग्रत की उठती है, उसी काल का हीन विचारित स्तीकी में मिलता है :

कावे चरित्पुत्र कवचिद्विदुः कम्पिताग्रप्रवाताः ।
 कम्पिताग्रप्रवाताः किमपि महता बुद्धिना दक्षिणीन ।
 विविदुष्टाधरकिञ्चनं प्रादुर्भवा मीनकावे ।
 वीरवर्णाणां पुत्रस्तथा त्वं प्रिये । स्मरन्ति ।
 वीरवर्णाणां पुत्रस्तथा त्वं प्रिये । स्मरन्ति ।
 प्रादुर्भवा मीनकावे तव मणिमवासीकच्छेष्टु चारु ।
 स्मरं स्मरं कथमपि मया मुहुयवा वदन्तीषी
 मन्वीवातुः पुनः । कृतीदुर्गमसीरम्यमनुः ॥

(२ । ५३-५४)

इन स्तीकी में कवि ने नायक की विभिन्न कामवतावीं तथा- तन्मयता , उन्मय, स्मरण, वीरता तथादि की चित्रित किया है।

वर्णनी विरहावस्था की चित्रित करते हुए, नायक कहता है कि - तीव्रवीरतापुत्रवत् विरहवश कल्पन्त लम्बी रात्रि की यम- तत्र विवरण करने जाता कृष्णक पत्नी किस प्रकार पूर्वदिता में उचित सूर्य की देकर उत्कर्ष स्व हीप्रता है वर्णनी प्रिया (कृष्णाकी) से मिलता है तो उसकी देकर धर हृदय में ऊँचा उत्कम्प होने लगती है।

तुः विरही नायक कहता है कि तुम्हारे

१- कीचित्पुत्र- उत्तर भाग ५५,

साथ ही की नारीक राजा व्यतीत किसे थे- उन्हीं की स्मृति कर में
एक कठोर विमोक्षण में केवल भावना स्वी करवा रही का वापस लेकर
ही किन्हीं प्रकार धर्म धारण करता हुआ भीवित हूँ।

उपसृत दोनों स्त्रीयों में कवि ने नायक की
विरहावस्था का चित्रण करना, यथावत् एवं मार्मिक चित्रण उपस्थित
किया है।

विश्रब्ध सुनार पूर्ण एक निम्नसिद्धि स्त्रीक
भी वर्तनीय है :

‘ वार्ध केतो मन्मथस्यैव योग्यं तस्यै ।
कैश्चिद् विद्यामयः सुतः । विप्र्रिति धर्मः ।
कासात् पण्डितो पुनरप्येव यथैव केवै नो
वापस्तीक्ष्णस्मरुतमुजा तस्य वर्णाङ्गमयीपि । ’ (२-५६)

इस स्त्रीक में नायक की प्रवासकथ्य विरहा-
वस्था - लीन शीघ्र, धर्म्य व संताप स्थादि का मनोवैज्ञानिक चित्रण
उपलब्ध है ।

इसी प्रकार निम्नसिद्धि स्त्रीक में प्रवास
कथ्य उन्माद अवस्था का चित्रण मिलता है, जिसमें विरहवत बुद्धि के सुच
की जाने पर विरही नायक विन में भी संभोग श्रद्धा की करवा करता
है :

‘ तीर्णप्रायी विरहवतः धिः केवलम्याप्रवादात् ।
केवै नापचितयमपि उद्यता ना विनीत् ।

पूषीवृन्तारैः सुरभिन्तु ततो मील । बौधान्तरेण
श्रीडिग्याको नवकथारुच्यान्मोहाव्ययानि ॥

(२- ६१)

उपसृत विवेक से स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत उक्त काव्य विप्रसन्न हृन्तार से परिपूर्ण है, जो उद्धरणों द्वारा प्रभाव में नायक तथा नायिका की सभी काम-वताओं का स्पष्ट रूप से उचित मिलता है।

हृन्तार से के वीनों ही पदों का विवेक करने के कारण यह काव्यपूर्णतः हृन्तार से प्रधान लब्ध काव्य माना जाता है। हृन्तार से के साथ साथ कल्याण से भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। विप्रसन्न से परिपूर्ण स्त्रीकों में विरह व्यक्त मानव कृत्य की ऐसी तीव्र वेचना है कि भावुक पाठकों को विप्रसन्न हृन्तार से बन कल्याण से के सीमा क्षेत्र के बाह्य पास प्रपण करता हुआ दृष्टिगोचर होता है।

नायक का सम्पूर्ण संदेश कथन ही का लक्षणिक उचित्यो से भरपूर है। विशेषतः वहाँ नायक ने अपनी विरहित प्रिया का विरह विप्र प्रस्तुत किया है। वहाँ कल्याण से पूर्ण रूप से उपलब्ध है। वस्तुतः कवि द्वारा विवेक कल्याण से अपनी पराकाष्ठा तक पहुँच गया है।

भाषा-शैली

को० सं० काव्य के तनुलीलन से मसी-मति स्पष्ट हो जाता है कि कवि उदण्ड का भाषा पर पूर्णाधिकार है। काव्य का कलापदा एवं भावपदा सबल, परिष्कृत और मजबूत है। भाषा-कुसुम भाषा, रीति, गुण तथा वर्तकार इत्यादि काव्य के कलापदा का निर्माण करती हैं। काव्य का भावपदा जिसे साहित्यिक भाषा में हम कवि काव्यात्मा कहा जाता है- कल्पना की मित नवीन उद्घातों तथा उदात्त वाद्यों से युक्त सुन्दर समन्वय पाकर काव्य का भाव पदा अपना स्वना सुन्दर परिपाक प्रदर्शित करता है, जिसके फलस्वरूप उनकी कलाकृति सर्वोत्कृष्ट बन गई है। भाव, कल्पना एवं वाद्यों इत्यादि का कुत-पूर्ण विरचन इस काव्य में उपलब्ध होता है। यह को० सं० काव्य कवि उदण्ड की काव्य कला का उत्कृष्ट प्रमाण है।

प्रस्तुत काव्य में इन्होंने अपनी कवित्व प्रतिभा के आधार पर, संवेत काव्यीयसुख, भावों के अनुकूल सरस एवं प्रसाद गुण युक्त तथा प्रसादमयी सज्जित भाषा को ही सर्वत्र प्रयुक्त किया है। क्योंकि विप्रसम्भ शृंगार इस प्रधान लक्ष्य काव्यों में विरल का सर्वांगीण विरचन प्रस्तुत होने के कारण कीमत तथा मधुर भावनाओं का प्राचुर्य पाया जाता है। अतः भावों की सुकीमलता एवं मधुरता के अनुरूप भाषा भी बड़ी सरस तथा प्रसादपूर्ण देखने में आती है। माधुर्य तथा प्रसादगुण के साथ साथ कवि रीति का परम उत्कर्ष पाया जाता है। उनकी भाषा को प्रसृत विशेषता प्रयोग के अनुकूल रूप परिवर्तन को प्राप्त है। भाव एवं परिस्थिति के अनुसार उनकी भाषा कहीं कीमत, कहीं मधुर और कहीं प्रसाद गुण युक्त दिताई

देती है। उसमें जहाँ एक ओर सुमधुर नाद सीन्धुर्य है, वहीं दुसरी ओर निवात्मकता भी प्रकट है उपसन्ध है। भावानुकूल ध्वनियों के शृंगार में उद्बुध की पर्याप्त सफलता मिली है। क्योंकि शृंगार एक प्रधान लच्छ काव्य होने के कारण काव्य की भाषा अत्यन्त सरल व सरल समासयुक्त होती पड़ती है।

शृंगार के संयोग पदा का चित्रण करते समय कवि की भाषा अत्यन्त सरल तथा दीर्घ समास रहित है। निम्नलिखित श्लोकों में इन सभी विशेषताओं का समावेश दोल पड़ता है :

कान्ताराणि प्रसवत्यैरिहन्नुवाकतामैः ।

हृदि हृदि कथितमहन्दलीलायितानि ।

(१। ३१)

सरल, सरल फटावली से युक्त निम्नलिखित श्लोक भी देखिए :

भह भह नवसुधाचूर्ति यत्र सौध ,

सौध सौध सुरभिकुसुमैः कल्पित केतितपः ।

तल्पे तल्पे रसपरिश कामिनोकान्तयुग्म

युग्मे युग्मे स हह विहरन् विश्ववीरो मनीषुः ॥ १

(१। ६५)

उपसंस्कृत श्लोकों से स्पष्ट है कि संयोग एक के

चित्रण में कवि ने माधुर्य गुण युक्त कोमलान्त फटावली का प्रयोग किया है, उसी प्रकार वियोगरस का चित्रण करते समय भी उनकी भाषा माधुर्य गुण लीक, सुकोमल वर्णा लय बल्प समास वाली फटावली से युक्त होस पड़ती है :

“ वय प्रायः प्रणयिनि वयि प्रीणिते माग्गतीभात्
कल्पप्रायेरहस्य दिवसेरेपि हृत्कण्ठमाना ।
रंजायेत प्रसवविरहीदेक्षिता पशताडुणी ।
मूर्ध्निधर्मज्वरपरवशा नीलकण्ठीव तिम्रा ॥ ”
(२।२५)

इसी प्रकार एक अन्य श्लोक भी देखिए :

“ पुष्परेणुनलकनिकरे नेयोबाण्यधुरं
हस्ते गण्डं क्षितविसल्लाहारभालं त्वनाग्रे ।
शोण्यां दासीं मलिनमसृणं सावकत्यंसहन्ती
त्यास्तामिदं कदुवितपितीमांस्तुकाता तिपातः ॥ ”
(२।३४)

इन उपर्युक्त श्लोकों में यद्यपि बल्प समास युक्त फटावली का प्रयोग ही देखने को मिलता है, किन्तु कहीं कहीं हमें लम्बे समासों का प्रयोग भी दोस पड़ता है। तथापि भाषामें कहीं भी दुस्वरा दृष्टिगोचर नहीं होती क्योंकि अत्यन्त सरल, सरल भाषा का ही प्रयोग

१- को० सं० २। ३३, ३५, ३८, ३६, ४३

२- वही २। ३७, ३८, ४८, ८४, ८६, २। ४८, ४३, ४४

करना कवि उद्विग्न की अपनी ही एक विशेषता है। निम्न पंक्तियों में इस रूप का स्पष्ट उल्लेख मिलता है :

‘वस्तुनानां लघिरन्विहृत्यस्तस्योन्मिहानां
ता लघ्वीवर्मास्तिकृत्तटीपिहृतर्कहृत्कानाम् ।
नासासुक्ताभरणकिरणोन्मिमन्दस्मिन्नानां
वैतस्वीणां भवति विवशीविप्रमर्दफोडपि ॥’

(११३७)

दीर्घ समास पदावली से युक्त एक श्लोक देखिए-

दारीयान्तस्थितिकृदणिमापगिदत्तिष्ठार्य
राशापातैर्निविहितवहिःप्राकणसिधमानैः ॥

(११८५)

धार्मिक, दार्शनिक एवं वाचनार सम्बन्धी विषयों के प्रतिपादन में भी कवि ने कृत्यन्त सरल, सुदीर्घ, प्रभाव गुण युक्त भाषा का ही प्रयोग किया है। इन स्थलों पर प्रयुक्त भाषा की पद्धति ही अर्थ सुस्पष्ट ही जाता है- सरल, सरल, समासरहित भाषा से युक्त कतिपय श्लोक दर्शनीय हैं :

‘पीठेष्वष्टावस्तु मर्दितामपोठं भवेत् ।
पारैकस्यै स्वयमिह परा देवता सन्निधत्ते ॥’

(११९७)

‘‘ तास्वज्यास्या हरिहरपासक्रिया-यागताता
मालापी वा यदि सहस्रधरादिपितृभ्यः ॥

वादिस्त्रक्षदिवपरिवृते निष्कृष्टाद्री निगण्णः ।
 कोकूथेयाः स सतु मधुरां सुखितामकण्यसुण्येत् ॥^१
 (१।८०)

“ येनां वसि समयनि हरिश्चंद्रनामा मरेन्द्रः ।
 प्रत्यापत्तिः पतन । यदुपरी च कीमारिखानाम् ।
 सुद्विषेणामस्ति स्तितये चण्डिका सम्निधत्ते ।
 तेनामिणां स्तुतिषु न मवेत् कस्य वक्त्रपवित्रम् ॥^२
 (१। ४५)

कतः कवि उद्दण्ड ने सर्वत्र भावानुसृत धरा स्व
 प्रवाहपूर्ण भाषा का प्रयोग कृतज्ञतापूर्वक किया है। प्रकृति के विविध
 पक्षों का चित्रण करते समय उनकी भाषा सर्वां धरा, धरा ही दिखाई
 देती है। कतः प्रभात, संध्या, सुरत श्रौद्धा इत्यादि प्रसंगों में उनकी कोमल
 कान्ध प्रभावती दर्शनीय है। काव्य के सौन्दर्य को दिगुणित करने के लिए
 कवि ने जहाँ उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, रूपक इत्यादि वर्तकारों को अपनी
 काव्य में यत्र तत्र चित्रित किया है। जहाँ भाषा की कोमलता एवं विविध
 वर्तकारों को मधुर भर्त्कार ने भाषा की वादित्वीय मधुरता प्रदान की है।

कवि ने इस निम्नलिखित श्लोक में विरहिणों
 नायिका के वर्णन में अनुप्रास के साथ साथ उपमा का भी सम्मिश्रित कर
 दिया है :

१- को० सं० १। ५६-६०

२- को० सं० १। ७२

३- को० सं० १। ३०, ५८

“ तत्र प्रज्ञावत्यस्तित महिषासी लिताताभमाना
 वातामना नित्यमध्ना मद्रियोगेन बीनाम् ।
 कस्याङ्गी सा कनकवती कोमलाङ्गी
 कन्दर्पाङ्गि कवामि कृतान्मिकरूपं वसित ॥

(१। १२)

इन्हे अनुप्रास भाषाविवरणा एवं स्वर- माधुर्य
 का संसार करते रहते हैं।

प्रस्तुत काव्य में कवि ने एक स्थल पर नायिका,
 का परिचय कही ही मधुर भाषा में दिया है :

“ सा नेत्राणाममृतगुहिका वृष्टिसारीविधातुः
 सौन्दर्यमयीः प्रयमकलिका दीपिका सुतधात्रयाः ।
 कन्दर्पस्त्री क्षिप्रवर्षिणीः कपिली केतुयष्टिः
 शृङ्गाराब्धिः तत्तद्वत्सला जीवितं मे दितीयम् ॥ ”

(२। १६)

इस पत्र में भाषा की प्रविष्टता, सरलता तथा
 प्रवाह का उत्कृष्ट निदर्शन पाया जाता है।

इस प्रकार समस्त काव्य में भाव तथा रसानुस्यूत
 भाषा के सौन्दर्य में अभिवृद्धि करने वाले माधुर्य एवं प्रवाद गुणों का अत्यंत
 समन्वय दृष्टिगत होता है। शब्दों का निपुणतापूर्ण चयन एवं कलात्मक
 प्रयोग कर भाषा की अधिकतम माधुर्य, साहित्यता प्रदान की है। अतः
 भाषा प्रविष्ट, परिमार्जित एवं प्रवादपूर्ण है। काव्य में कही माधुर्य व्यक्त

स्निग्ध मधुर पदावली का कहीं कोमलकान्त पदावली का, तो कहीं श्रुति-सुकुमार हृदयकवी का आभास मिलता रहता है। दैनिक जीवन के गूढ़ एवं प्रत्यक्ष सत्यों को कवि ने बड़े हृदयग्राही ढंग से प्रस्तुत किए हैं। सूक्तियों की सरसता, उदाहरणों की अनुरूपता, उर्वर कल्पना, अजस्र शब्द राशि एवं मौलिक अर्थों की उद्भावना ये सभी गुण सर्वत्र इस काव्य में उपलब्ध हैं।

शैली

जिस प्रकार भाषा मनोभावों एवं विचारों का वहन करती है, उसी प्रकार शैली उन मनोभावों तथा विचारों में संगति स्थापित करती है। अतः शैली उस अभिव्यक्त प्रणाली का नाम है, जिसके द्वारा कोई रचना आकर्षक, मोहक, रमणीय और प्रभावोत्पादक बनाई जा सके। शैली का उत्कृष्ट रूप रीतियों के द्वारा ही अभिव्यक्त किया जाता है। रीतिरात्मा काव्यस्य^१ इस लक्षण के आधार पर कवि ने अपने काव्य में पद संघटना द्वारा पदलात्तिय प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है तथा जिन वर्णों एवं शब्दों का प्रयोग किया है, उनमें अल्पसमासवाली वृत्ति का ही प्रयोग सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। लात्तिय, वर्ण माधुर्य तथा अल्प समास वृत्ति जिसमें प्रयुक्त हो, वह वैदर्भी रीति कहलाती है।

माधुर्य व्यङ्ग्यवर्ण रचना ललितारत्निका

आवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते ॥^१

कतः कवि का क्लिदास के समान उद्बुद्ध ने भी अपने काव्य में सर्वत्र वैदर्भी रीति का ही प्रयोग किया है। वैदर्भी रीति में परिष्कृत तथा प्रसादपूर्ण शैली को ही उन्होंने अपनाया है। इस रीति के अनुसार भाषा में क्लिष्टता एवं कृत्रिमता है, है, अतएव उनके पद-विन्यासों में माधुर्य के अभिव्यक्त वर्ण हैं, भाषा ऐसी ललित, स्वभाव-विक तथा सरल है कि सुनते ही कानों में क्लृप्त शीतल का तत्काल व्यञ्जोष करा देती है। अतएव समास युक्त होने के कारण भाषा में कहीं भी क्लिष्टता और दुर्बलता नहीं दिताई देती है।

कथानक एवं घटना जैसे कहीं भी हैं, उसकी ये अपनी कल्पना प्रकृत क्लृप्त दृष्टि ने पुण्य द्वारा ऐसा भाव्य वाचिक एवं जगत्कृति पूर्ण बना देती है कि वह देखते ही बनता है।

मानव हृदय के भावों को व्यक्त करने का उनका प्रकार भी अनुपम है। उन्होंने शब्दों को व्यक्तता शक्ति पर विशेष बल दिया है, अभिधा शक्ति पर कम। इसलिए उनके भाव सदा व्यक्त हो रहते हैं, वाच्य नहीं होते और भावों की यह व्यक्तता ही काव्य जगत् को अक्षिप्त विभूति है, भाषाभिव्यक्त में कवि ने विरलजगत्तात्पर्य शैली का प्रयोग किया है विरलजगत्तात्पर्य शैली का नहीं। गुंजार एवं के दोनों ही पदों में सर्वत्र यही शैली दृष्टिगोचर होती रहती है।

पदों की स्पष्टता स्वर सौष्ठव, माधुर्य क्लिष्ट एवं कौमल संगीत लहरी उनके काव्य में दर्शनीय है जिसकी मन्द मन्द गति विप्रसन्न गुंजार के कर्णकोमल भावों को व्यक्त करने में विशेष

कहायक हुए हैं। परिमित पदावली में भाव की विशद योजना कर देना इस काव्य का विशेष गुण है। अतः इस प्रस्तुत काव्य की शैली कवि की स्वाभाविकता एवं प्रभाविकता का उत्कृष्ट उदाहरण है।

उदण्ड की काव्य रचना शैली में वर्तकारों का समुचित प्रयोग वपुर्ब समणीयता का संसार करता है। जब तक उनकी काव्य कृति में वर्तकारों की हटा नितान्त दर्शनीय है। उनके काव्य में वर्तकार स्वाभाविक रूप में ही आते हैं तथा उनकी कविता का पिनो के रूप में - शीन्ध्य में निरन्तर वृद्धि करती रहती है। काव्य में बलात् वर्तकारों को लादने को केहटा कवि ने कदापि नहीं की है। अवर्तकारों की अपेक्षा वर्तकारों का अत्यधिक प्रयोग दोस पड़ता है, विशेषतः उपमा का। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, यमक, अनुप्रास, श्लेष इत्यादि प्रसृत वर्तकारों का बड़ा सुन्दर निदर्शन काव्य में उपलब्ध है। इन सभी वर्तकारों का विस्तार पूर्वक चित्रण, वर्तकारों की उद्भावना के प्रसंग में हम कर चुके हैं। अतः उनकी चित्रण शैली विविध वर्तकारों के माध्यम से उत्कृष्ट रूप में अभिव्यक्त हुई है।

प्रकृति के समणीय चित्रांकन करने में भी सबंध यही शैली दोस पड़ती है। इनका प्रकृति-चित्रण, विस्तृत, वर्तकृत, सबीब एवं सुदृढ-निरीक्षण-शक्ति का परिणाम है। इनकी शैली में शब्द-व्यं तथा भावना-भाव का रुचिर-साम्यवत्य स्पष्ट लक्षित होता है। प्रकृति वर्णन को संरिक्त एवं प्रभावोत्पादक बनाने के लिए बीर भावों में तीव्रता प्रदान करके के लिए विविध वर्तकारों का सुन्दर प्रयोग किया है। वर्तकारों के प्रयोग में कवि ने पर्याप्त कुतलता का परिचय दिया है, एवं

प्रवाह में कहीं भी बाधा उत्पन्न नहीं होने दी है। कहीं, किसी भी प्रकार की बाधितता न होकर सर्वत्र मैसूरिगिता ही व्याप्त है। सूक्ष्म-निरीक्षण-शक्ति, समत्कृत-पूर्ण-वर्णन-प्रणाली, वक्ष्य-सर्व-राशि तथा कल्पना-प्रभृत मालिक-वर्णों को उद्भावना, विशेष रूप से विलसाई पड़ती है।

वृत्ति, रीति, उत्कार इत्यादि के वतिरिक्त इन्द्र प्रयोग की दृष्टि से भी यह काव्य उत्कृष्ट है। वादि से अन्त तक सभी इन्द्र भय है, क्योंकि इन्द्रों की योजना में भयता अनिवार्य है। काव्य में प्रयुक्त मर्यादा की सब सब तरह गति भावों के साथ साथ मानवीय हृदय में भी स्पन्दन करने में सहायक है।

कवि उद्गृह्यते अपनी को० सं० काव्य में स्वयं हो एक स्थल पर, कोकिल की काव्य कल्प बताते हुए शिष्ट विशेषणों द्वारा अपनी काव्य का ही कुछ सामान्य सा परिचय दिया है :

‘इताञ्चैव इन्द्रियतिमयि मया शोभने च निरुद्धं
काव्यं शब्दैः सरसमुपमीमाजमभ्रान्तवृत्तिम् ।
दृष्ट्वाप्या प्रसिधितमिह त्वं सते । काव्यकल्पे
धोमान् पश्येत् स्वयदिननु ते शुद्धस्य प्रचारः ॥’ (१।८२)

वर्णित इस काव्य में इन्द्र भी इलाय्य है, कयं भी निरुद्ध है, विद्वानों के जित्त की कर्ण मधुर वर्णों द्वारा यह काव्य वर में करता है तथा इसकी शैली और प्रवाह निरुद्ध है। कवि का यह कथन सर्वथा युक्तिपूर्ण ही प्रतीत होता है।

कतः कवि उदण्ड ने अपने की० सं० काव्य में उदार, माधुर्य, परिष्कृत, स्वाभाविक, साहित्यमयी शैली को ही अपनाया है। प्रबल-पक्षिया, अभिनव-विचारधारा, तथा सुवृत्ति, इत्य माधुर्य, सरस, मधुर-सुवृत्तियाँ, मधुर-भावाभिव्यञ्जना, स्वाभाविकता, सर-लता, सरसता, प्रचुर प्रभाव एवं माधुर्यगुण युक्त भाषा, रमणीय वृत्त्युहाही प्रकृति चित्रण, सरस कर्तारों का मनीसर योग स्पष्टता, सुकुमास्तता एवं रमणीय इत्यादि उत्कृष्ट गुणों में यत्र तत्र सर्वत्र की० सं० में दृष्टिगोचर होती रहते हैं।

कतः महाकवि कालिदास कीतरह कवि उदण्ड ने भी इस काव्य को प्रभावगुण से वीत-प्रीतकर दिया है। और कैदभी रीति तथा कीलकी वृत्ति में ही इस काव्य की रत्ना को है। चुन चुन कर सरस और कोमल शब्दों को ही रसा है। माधुर्य, सरलता और स्पष्टता ही उदण्ड की शैली की प्रमुख विशेषतायें हैं। उदात्त तथा दीप्यमान काल्पनिक शक्ति के द्वारा कवि उदण्ड की शैली में प्रवाह, लय तथा चिन्ती-पक्षता आदि गुण पर्याप्त रूप से पाये जाते हैं। बाह्य तथा मानव प्रकृति दोनों के चित्रण में ये कुशल हस्त हैं। नगर के वर्णन में प्रत्येक पद में तत्त्व-वृत्त्य का एक शब्द चित्र सा प्रस्तुत किया गया है। उल्लेख मानवीय भाव-नाओं के चित्रण में भी कवि ने पूर्ण कुशलता का परिचय दिया है। नायिका की विरहावस्था का वर्णन कदा ही भावपूर्ण है, जो कि सहृदयों के हृदय में कलना का संसार किये बिना नहीं रह सकता। काव्य की प्रत्येक पंक्ति से कवि की सुकुमार भावनाओं तथा उपयुक्त शब्द चयन का प्रमाण मिलता है। वास्तव में इनकी शैली में चिन्तित वर्णन के साथ साथ संगीतात्मक

व्यङ्ग्यव्यक्ति की भी शक्ति निहित है।

अतः विलम्बिता एवं कृत्रिमता से रहित यह एक
सुन्दर विलम्बिता कृति है।

वर्तकार

‘वर्तकार्योऽनेनैत्यवर्तकारः’

एक व्युत्पत्ति के आधार पर वर्तकार रसाधिकों को सुशोभित करते रहते हैं। प्रायः काव्य के सौन्दर्य को दिगुणित करने के लिए वर्तकारों को प्रयुक्त किया जाता है। अतः काव्य की उत्कृष्टता को वृद्धि करने के लिए ही काव्य में वर्तकारों का चित्रण करना आवश्यक प्रतीत होता है।

किन्तु कौकिल सन्देह में वर्तकार समस्त रूप में काव्य के सौन्दर्य को दिगुणित कर रहे हैं। कवि ने कहीं भी अस्वाभाविक वर्तकारों की लादने का प्रयास नहीं किया है। कौकिल सन्देह में कवि ने प्रायः अनुप्रास, यमक, रसिक, रूपक, उत्प्रेक्षा, वृत्तियोगित, प्रतिमान उद्देश, विभावना, व्यतिरेक, अपरणा, अर्थान्तरम्यास एवं उपमा इत्यादि अधिकतम समीक्ष्यवर्तकारों एवं वर्तकारों को यत्र तत्र निहित किया है।

उपयुक्त प्रसुत वर्तकारों का चित्रण कवि ने किन किन स्थलों पर किया है, इसको निर्दिष्ट करना भी यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है, जो निम्नलिखित प्रकार से है।

कुप्रास वर्णर

" कुप्रासः तत्त्वसाम्यं वैचर्म्यऽपि स्वरस्य च १ "

प्रस्तुत संक्षेप काव्य में कुप्रास का कल्पित पुनर-
प्रयोग दोह फलता है। भाषा में गति प्रवाह एवं मनुक्ता लाने में कुप्रास
का प्रयोग किया जाता है। कुप्रास के पाँचों प्रकार का इस काव्य में
प्रयोग किया गया है। कवि ने अपने काव्य में कुप्रास वर्णर का वर्णन
कहीं कहीं एवं किस किस रूप में प्रस्तुत किया है, उल्लाख विवरण करना
यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है, जो निम्नलिखित प्रकार है।

१- द्वैतानुप्रास

जहाँ एक या दो वहाँ कीकिस एक बार
वाच्यता हो, वहाँ पर द्वैतानुप्रास होता है।

द्वैतानुप्रास के दो उदाहरण की० सं० में दृष्टि-
गोचर होते हैं- यहाँ एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

" तत्र विज्ञान प्रिय सत्त्वरी विप्रयोगातिदीर्घान्
कामातर्पि तिवणिव समुत्सृज्यमाधान् कपीषित् । "

(१-४)

उपर्युक्त श्लोक की प्रथम पंक्ति में स्वररक्षित

१- सा० व० पृ० २७५ , १०१३

२- डॉ० मेकस्य संस्कृत-काव्यप्रकाश ६१४

‘ १ ’ (त्र) वर्ण की एवं द्वितीय पंक्ति में ‘ ३ ’ वर्ण की एक ही प्रकार से क्रम से समान रूप से वावृत्ति की गई है। अतः हेकानुप्रास है।

२- वृत्त्यानुप्रास

यदि एक व्यंजन की या एक से अधिक व्यंजनों का एक से अधिक बार सादृश्य हो तो यहाँ पर वृत्त्यानुप्रास होता है।

उक्त प्रयोग काव्य में अनेक स्थलों पर हुआ है, विशेष काव्य में समीचीनताका समावेश ही गया है। यहाँ कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है :

‘ तं कृषन्तं कलमधुरया पतमस्वानभंगवा
कान्तालापस्मरणविदग्धः किंचिदारादुपेत्य । ’

(१-५)

उपरोक्त पद्य में ‘ क ’ व्यंजन की बार बार वावृत्ति होने से वृत्त्यानुप्रास है।

‘ तीक्ष्णालो जलकिञ्चलैराह्वयन्तो सरागा । ’

उक्त पंक्ति में ‘ ल ’ वर्ण की अनेक बार वावृत्ति होने से वृत्त्यानुप्रास है।

वृत्त्यानुप्रास का एक अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है :

‘श्रुताव्यावाहितमुपेक्षितं कोकिलाव्याजबन्धी
कान्तैः शार्ङ्गं ननुष्टयै कामिनोपनिभाजः ।’
(१-७)

एष श्लोक में ‘क’ व्यंजन की वास्तुति बार
बार होने से श्रुत्यानुप्रास है।

३- श्रुत्यानुप्रास

ताहु, कण्ठ, मूर्धा, वन्त आदि स्थानों में से
किसी एक स्थान से उच्चारित होने वाले व्यंजनों की समता की श्रुत्यानुप्रास
कहते हैं।

यह अनुप्रास वस्तुप्रिक कर्णप्रिय होने के कारण
ही श्रुत्यानुप्रास कहलाता है। प्रस्तुत काव्य में इसका प्रयोग यह तत्र दित-
शार्ङ्ग पड़ता है। यथा-

‘‘ येष्वां वीरे समवनि हरिश्चन्द्रनामा नरेन्द्रः ।
प्रत्यावर्त्तिः प्लव । यहुपरी च कीमा रिलानाम् ।
युद्धे येष्वापस्तिहस्ये जडिका सन्निधत्ते
तेष्वापेष्वां स्तुतिषु न नीत् कस्य वचनं पवित्रम् ।’
(१-४५)

एष श्लोक की प्रथम पंक्ति में ताहु स्थान से

१- आ० द० १०१४, पृ० २७५

२- की० सं० (१-५६) श्लोक

५- साटानुप्रास

केवल सात्पर्य भिन्न होने पर शब्द एवं अर्थ दोनों की आवृत्ति होने से साटानुप्रास होता है।

इसका प्रयोग काव्य में कई स्थलों पर दीस
पाता है^२ :

“ कान्ताः कान्तान् परभृत । .

कृष्णकार्मिकं विमुञ्च । ” (१-३८)

स्वपरिचित में प्रयुक्त कान्ताः कान्तान् एवं दोनों शब्द के भिन्न भिन्न अर्थ हैं, तथा सात्पर्य भी भिन्न भिन्न हैं, किन्तु दोनों की आवृत्ति होने से साटानुप्रास है।

जैसे प्रकार कोकिल उदित काव्य में कवि उदण्ड ने अनुप्रास को समुचित योजना को है और अनुप्रास के पाँचों भेदों सहित काव्य में उसका प्रयोग किया है।

उपमा वर्तकार

“ साम्ये वाच्यसौधस्य वाचकस्य उपमा दयीः^३ ”

वर्णालंकारों में उपमा वर्तकार प्रधान है। यह काव्य सृष्टि की आत्मा माना

१- शां० द० १०।६

२- की० सं० (१-४२)

उच्चारित होने वाली 'य' तथा 'व' वर्ण की उच्चारण क्षमता प्रतीत हो रही है तथा 'सुद्वेयानामस्तिष्ठत्ये' में एक ही स्थान के तात्प्राक्क 'य' वर्ण का उच्चारण, तात्प्राक्कान्ताक्क न वर्णिय 'व' का उच्चारण वीकार्य के कारण भ्रुति होती है, अतः वृत्त्यानुप्रास का सफर उदाहरण है।

४- वृत्त्यानुप्रास

काव्य में इसका प्रयोग नाद-लीन्दर्य वृद्धि के लिए करते हैं। प्रथम स्वर के साथ ही यदि यथावस्त व्यंजन की आवृत्ति हो एवं इसका प्रयोग पदान्त में हो, वही वृत्त्यानुप्रास होता है।

प्रस्तुत काव्य में वृत्त्यानुप्रास का प्रयोग यत्र तत्र दिखाई पड़ता है। यथा-

“कल्याणी सा कनककदलोकन्दलीकीमलानी
कन्दर्पाग्नि कथमिव क्लृप्तग्नि कल्पे सहेत ॥”

(१-२२)

इस श्लोक में नाद एवं लीन्दर्य की उत्पन्न करने के लिए 'क' व्यंजन की आवृत्ति की गई है, एवं अंतिम पंक्ति में आवृत्ति की दृष्टि से पद प्रयोग वृत्त में किया गया है। अतः वृत्त्यानुप्रास है।

१- सा० द० १०।६

२- को० सं० १-१५-१६

एक शब्द को दो बार वापस होने से यमक की प्रतीति प्रतीत हो रही है। ३० में पद्य में कान्ताः कान्तान् पद्युत । इस पद्यित में कान्ताः कान्तान् यह शब्द दो बार प्रयुक्त हुआ है, केवल विभक्ति का प्रयोग भिन्न है, वर्ण में भी भिन्नता है। क्योंकि एक कान्ता शब्द का वर्ण है- नायिका और दूसरे का वर्ण है प्रिय व्यक्ति । वर्ण को भिन्नता होने के कारण यमक का उदाहरण यहाँ दृष्टव्य है।

यमक का प्रयोग यदि साहित्यकार अपनी कृतियों में नहीं करता है तो वह काव्य काय्यकार की उत्कृष्टता का गीतक नहीं है। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए कवि उदयन ने अपनी टीका को बनाने के लिए यमक वर्तकार का प्रयोग स्वतः स्वतः पर विहित रूप में किया है।

रसिक वर्तकार

रितः परिकारानिधाने रसिक उच्यते । १

वर्ण, प्रत्यय, लिंग, प्रकृति, पद, विभक्ति, वचन और भाषा इनके रितः होने के कारण वर्ण रसिक, प्रत्यय रसिक आदि भेदों से यह वर्तकार वाठ प्रकार का होता है। रितः पदों के द्वारा कवि उदयन ने अपनी को० सं० में अनेक स्थलों पर रसिक का चमत्कार प्रदर्शित किया है।

प्रस्तुत काव्य में रसिकता प्रयोग दर्शनीय है :

“ वीधिं तुमे सह वक्षितया को पि संशोढमानः ।
 प्राय स्वायं परम गुरुणः शैलभागे निधेयः ॥ ”
 (१।२)

इस पद्य में प्रयुक्त ‘ पिय ’ शब्द के दो अर्थ हैं।
 प्रथम अर्थ है- सुन्दर स्त्री तथा द्वितीय अर्थ में ‘ पिय ’ शब्द का अर्थ
 लक्ष्मी है, जो विष्णु के साथ विराजमान इस अर्थ का भीतक है :

“ पित्रा देवी नतिरिय मर्षी शैलजा मण्डिताया । ”

इसी प्रथम पद्य को तृतीय पंक्ति में प्रयुक्त शैलजा
 शब्द से अनेक अर्थों की प्रतीति हो रही है, सामान्यतया शैलजा का अर्थ
 है- पर्वत से उत्पन्न वस्तु यथा- लता, बीजध, पुष्प इत्यादि । किन्तु
 इस पंक्ति में प्रयुक्त शैलजा शब्द का अर्थ है- पर्वतों से सुशोभित । किन्तु
 शैलजा शब्द से यहाँ हिमालय की पुरी पार्वती ‘ इस अर्थ की प्रतीति
 होती है। अतः शैलजा का सामान्य अर्थान्वयन इसमें प्रतीतिही रहा है।
 इसी प्रकार २६ वें पद्य को अंतिम पंक्ति में प्रयुक्त ‘ वृग्नि ’ शब्द से अनेक
 अर्थों की प्रतीति हो रही है :

“ वृग्नि वृग्नि गृहविट्पिना स्पष्टयिष्यन्ति कोराः ॥ ”

यहाँ प्रयुक्त वृग्नि शब्द का अर्थ है- सितर । किन्तु
 सितर शब्द संग्रह के सितर का, वृक्षा के सितर का तथा पर्वत के सितर का
 भी बोध होता है। अतः एक ही शब्द से तीन अर्थों की प्रतीति होने से
 श्लेषा बर्तकार है।

इसमें कवि ने वाप्रवीवरी का वर्णनार्थि वर्ण के स्वर्ण के समान चित्रित किया है। वाप्रवीवरी उपमान में, कपिलवर्ण के स्वर्ण रूप उपमेय में, वाप्रवीवरी वर्ण का वापास चित्रित किया है। अतः यहाँ भी उपमेय में उपमान का वारीय प्रकट होने से स्पष्ट वर्तकार है।

काव्य में वर्णित नृणां नदी के वर्णन प्रसंग में कवि ने नदी में नायिका का वारीय किया है :

“ वाहस्यन्वा शफरनया कम्बाकस्तनवीः ।

कल्पीलुः कम्बवदना कम्प्रीवातकिश ।। ”

(१।६०)

यहाँ पर स्पष्ट वर्तकार के द्वारा नदी की नायिका का रूप दिया गया है। इस प्रकार विभिन्न स्थलों पर स्पष्ट का विस्तृत चित्रण कवि ने अपने काव्य में किया है।

उत्प्रेक्षा

वर्णनकारों में कवि उदयन ने उपमा वर्तकार के परमात् उत्प्रेक्षा वर्तकार को ही सर्वाधिक चित्रित किया है।

किसी प्रस्तुत वस्तु की अप्रस्तुत के रूप में संभावना करने की उत्प्रेक्षा करते हैं। किसी भी वस्तु का , नगर का , प्रकृति का इत्यादि सभी का चित्रण करते समय, कवि ने अपनी कल्पना का पुट देकर

गया है। यह समस्त काव्यालंकारों के मूल में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है। भावों के द्वारा कल्पना को जितनी अधिक प्रेरणा प्राप्त होती है, उपमान योजना उतनी ही सार्थक होती है। स्व, यथा, तुल्य, सवृत्, सम, वत् आदि के द्वारा जहाँ सादृश्य वंशित हो वहाँ उपमा वर्तकार होता है। सामान्य धर्म, उपावाक्य, उपमेय और उपमान ये चारों यदि किसी शब्द से प्रतिपादित हों तो उसे पूर्णापमा कहते हैं।

प्रस्तुत काव्य में कवि ने उपमा वर्तकार के विभिन्न अवसरों का संगोपांग विवर्णन वीक स्थलों पर किया है। कतिपय स्थल दर्शनीय हैं :

तत्रारामाः सुरभिषर्चितं त्वया वृत्ते । मानयेयु-
स्तुल्यप्रीतिर्नवति हि जनी राजवप्रावमित्रे ॥^१

(१।२६)

इस पद्य में तुल्य एवं वत् शब्दादि के द्वारा सादृश्य वंशित होने से उपमा वर्तकार की प्रतीति हो रही है।

“ बुभुक्षन् बिम्बाधरमिव नवं पल्लवं शोणुर्गर्भं ”

(१।३३)

इस पंक्ति में बिम्बाधरमिव शब्द केद्वारा उपमेय व उपमान का प्रयोग किया गया है। “ वधर ” उपमेय है तथा “ बिम्ब ” उपमान है। अतः यहाँ पूर्णापमा का चिह्न विद्यमान है। एक स्थल पर

प्रवाहित होती हुई ' निरा नदी ' की कवि ने कितनी सुन्दर उपमा प्रस्तुत की है :

‘ पार्श्वे यस्य प्रवहति निरा नाम कस्तोहिनी वा
सन्ध्यानुत्तमिण् पतिता मस्तकाग्वाह्मवीथ ॥ ’
(१।७२)

इस पद में कवि ने प्रवाहित होती हुई निरा नदी की उपमा बाह्मवीथ की प्रस्तुत की गयी है। अर्थात् निरा नदी कस्तोहिनी गंगा के समान बताई है।

निम्नलिखित श्लोक में कवि ने उपमा बल्लार की वृत्ति उत्कृष्टता के साथ चित्रित किया है :

‘ क्रीपस्य बहति विमलं पर्यपार्श्वं सुधाशोः
परबाधार्गं सुमुति । रमणीरित्स्मापिषमानाः ।
(२।१२)

इस पद में बल्लार उपमेय है, सुधाशु उपमान है। स्वर्ण नदी के मुक्त भाग को तुलना चन्द्रमा से की गई है। अतः यहाँ उपमा की प्रतीति हो रही है।

निम्नलिखित श्लोक में कवि ने विपुल वस्तु के

१- की० सं० १ । १। १२, २५, ५२, ५६, ५७, ७४, ८८, ८९, ८९,
९०, ९१ ।

२। १, ५, ८, ९, ११, १३, १५, १८, २५

शीन्दर्य की समानता कविता के जपन प्रवेश पर चमकती हुई कविता है की
है :

‘ विपुलस्ती पुनरपि नवा रम्भाभीमलोला
वेत्तकाम्या विपुलवपनप्रस्तकानिउपेव ॥ ’

(२१२०)

कतः यहाँ पर उपमा अलंकार स्पष्ट है। निम्न-
लिखित श्लोकों में विभिन्न उपमानों के द्वारा उपमेय भूत नायिका के कव-
यर्षा का वर्णन नायक ने कितनी कुशलता के साथ प्रतिपादित किया है।
अपने प्रसूत केशभार, चन्द्र तुल्य मुल, कुल कलश, रोमराशि, कटिप्रदेश कम-
लम्प, कर किशलय, वक्षोस्थि भू पटल, कंधर बिम्ब इत्यादि की श्रुतिक
उपमाएँ दर्शनीय हैं :

‘ नोभीकुर्वन्त्यस्तवस्तिता नेत्रापाताः कुणिमान्
वीचोगवं हरति नितिलं विभ्रमान्दीप्तिता भूः ।
पाणो कल्पमकिशलयप्राभवं न वामिने
वाणो तस्या बहति भवतां पैयैर्वाल्पेरीम् ॥
साकान्तिशब्दवति कनकं तन्मुलं केत् क हन्तुः
सा केद् बिम्बाधरमधुरता तिक्ततामिति माधवो ।
सा वा तस्या यदि तनुक्ता मासती लोक्षतुल्या
तौ केदुल कनकपतीक्ष्णमयीः क्वापि हम्पः ॥

(२१२२, २३)

कतः प्रस्तुत काव्य में कवि ने उपमा अलंकार के
प्रयोग में उपमानों का जपन अधिकारितः पक्ष- पक्षियों- हरिण, हंस,

कीकित, प्रमर, वृक्षा, विभिन्न पुष्पा, लतावी नदियाँ, विस्तृत, वाकाश
 इत्यादि प्रकृति के विभिन्न पदार्थों से किया है। कवि उदयक ने अपनी काव्य
 में इस वर्तकार का प्रयोग सर्वाधिक एवं सुनियोजित ढंग प्रयुक्त करके काव्या-
 त्मक होम्बद्वय को द्विगुणित कर दिया है।

यसक वर्तकार

‘सत्यर्थं पुष्पाध्यायाः स्वर व्यञ्जनसंख्येः ।

अपेण तेनैवावृत्तिर्यसकं विनिगम्यते ॥ १

प्रस्तुत काव्य में कवि उदयक ने यसक वर्तकार का
 कतिपय स्थलों पर प्रयोग किया है। कवि ने सार्थक एवं निरर्थक दोनों ही
 वर्णों में वर्णों एवं शब्दों को आवृत्ति द्वारा इस वर्तकार को समाधीकृत
 की है। दो पदों में कहीं सार्थक पदों का ब्यक्ता कहीं निरर्थक पदों का
 वर्ण होता है, कहीं एक पद सार्थकही ब्यक्ता कहीं एक पद निरर्थक ही,
 इत्यादि विविधताओं के आधार पर आवृत्ति समुदाय की भिन्नार्थकता
 अवश्य होनेों चाहिये। वही यसक वर्तकार होता है। प्रस्तुत काव्य के पूर्व-
 भाग के १२वें श्लोक में दो समान शब्दों का प्रयोग तो नहीं हुआ किन्तु
 समान व्यञ्जन वर्णों को अम से आवृत्ति पायी जाती है। यथा- ‘कनक
 कन्दली कन्दलीकोमलानि’ ‘‘ इन शब्दों के प्रयोग में भिन्नार्थकता है, फिर
 भी यसक की प्राप्ति यहाँ हो रही है। उसी प्रकार २१ वें श्लोक की वीतिम
 पंक्ति - ‘‘ लीवलीवमस्तलणोसिपिता’ ‘ इत्यादि में समानार्थक

इस प्रकार प्रस्तुत काव्य में वर्तकारण विशेषताओं में रसिकता का प्रयोग भी कवि ने सफल स्थल पर किया है।

रसक वर्तकार

‘ रसकं रुपितारोपी विषये निरपह्नवे । ’ १

प्रस्तुत में वप्रस्तुत का आरोप कर रसक वर्तकार को योजना की जाती है। इसके प्रयोग से काव्य के वर्णना सीम्बर्य में वृद्धि की जाती है। कवि ने प्रस्तुत काव्य में इस वर्तकार का प्रयोग स्थान स्थान पर प्रदर्शित किया है :

‘ मेघश्यामी मुष्मत्श्यामीविनीहारणष्टे । ’

- (१.३५)

यहाँ प्रस्तुत मेघ श्याम में वप्रस्तुत का वर्णन मेघ सदृश दयाम वर्ण है, जिसका ऐसे भगवान् शेषनाग का आरोप होने से रसक वर्तकार की प्रतीति हो रही है। निम्नलिखित श्लोक में भी उपमेय में उपमान का आरोप स्पष्ट रूप से प्रकट हो रहा है :

दष्ट्वा चैत्रा कनकपिता मेघरीशूतशण्डात् ।

पदाब्जावातवत्तिनभीमागमुद्गतधरं त्वाम् ।

विद्युत्सन्धेर् नवजलधरं मन्थमानाः सतीर्ष

न तिष्ठन्ति प्रियसत । जलत्पिण्डभारामग्राः ॥ ’

(१.३४)

उसे और अधिक रम्य बना दिया है। इस वर्णन की समायोजना द्वारा कवि ने इस काव्य में चमत्कार तथा खोलेकर्म उत्पन्न करने का भी प्रयास किया है। कवि उद्वेग ने उत्प्रेक्षा के विभिन्न भेदों को अपने काव्य प्रसिद्धि के द्वारा स्पष्ट स्पष्ट पर चित्रित किया है।^१ जो साहित्यिक उत्कृष्टता का जीवक है। कवियुग उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है :

‘उन्मज्जन्मिः पुनरिह क्वात् पलायन्मिर्मिरीन्त्र-
मुन्दैर्नामिं भुजपटलिकोद्धामरिगाह्यमानम् ।’
(१।६२)

इस पद में पर्वतों का पतन होना और उठ पाना ।
यह ‘उन्मज्जन्मिः’ के द्वारा कवि ने अभिव्यक्त किया है। इसमें द्वितीत्प्रेक्षा तथा मुणीत्प्रेक्षा दोनों ही विद्यमान हैं।

निम्नलिखित श्लोक में कवि ने प्रस्तुत (प्रपरावस्थितियों)
की अप्रस्तुत वस्तु नील कमल में संभावना प्रदर्शित करने की चेष्टा की है :

‘त्वय्याकाशे सुभग । तटिनीं सम्पमाने सतीतं
विम्वं दृष्ट्वा पयसि मणिर्भगप्रैकम्यमानम् ।
वीथिवेगप्रवतदक्षिताम्भी विनीमुच्चमुद्रया ॥

(१।६१)

इसमें नदी के आस पास फैलाती हुई प्रसर पीथिव्यों
की आभा ऐसी प्रतीत हो रही है, मानो नील कमल पुष्पों का समूह ही ।
शब्द : उत्प्रेक्षा वर्णन ही है।

एक अन्य कव में कवि ने नायिका के निरन्तर रोते रहने का उत्प्रेक्षा के आवरण में कितना मर्मस्पर्शी चित्र खींचा है :

‘ श्रीठाठैसी मनमृषीः कान्तिपुरस्य कीर्ती ।
स्यात्ततस्या ध्रुपसुरविषी किंविद्यायाध्रुपुषी ।
पदिरतिनः तस्तुहुनिर्भा त्याक्यन् हारमाता
मन्ये भीती वितरति तयी लुधाराभिरन्याम् ॥ ’
(रा २६)

कान्तिरन्यास वर्तकार

जहाँ सामान्य के द्वारा विशेष का क्या विशेष के द्वारा सामान्य का समर्थन किया जाय, वहाँ कान्तिरन्यास वर्तकार है।^१

प्रस्तुत काव्य में एक उत्कृष्ट काव्यकार के गुणों की उल्लासता से कीकित जैसा मानव हृदय विहीन प्राणी भी उस तत्त्व की प्राप्ति कर लेता है, जहाँ मानव मात्र की पहुँचने में कठिनाई होती है। कीकित की उचित प्रशंसा करना एक महान् कार्य है, उस कार्य की एक सामान्य पक्षी के द्वारा कवि सम्पन्न कराना वास्तव में विशेष प्राणी से सम्बन्ध पाकर कीकित जैसा सामान्य पक्षी भी मानव हृदय की चित्ति-पष्टता की प्राप्ति कर लेता है। जहाँ कवि ने मार्ग निर्देशन करते समय, नदी, नदी, पर्वत, पर्वत, पर्वत पर वास्तु होते हुए सब स्पर्श करते हुए मत्तव्य स्थान तक पहुँचने का आदेश दिया है, उन सभी स्थलों पर कान्तिरन्यास वर्तकार का ही प्रयोग किया है।

कथा- श्रीकामाख्या चिन्तयन्नेतत्तत्त्वकात्मनात्वं ।

दृष्ट्वा यान्त्यः स्वभवमुपास्तुवानाविमानाः ॥ १

(१।१४)

प्रस्तुत रलीकर्मितव्य मार्ग का वर्णन करते समय नायक कोकिल से कहता है कि तुम कामाख्या देवी के फात्मन पाद में होने वाले कर्मोत्पन्न की भी वेत्ता । कामाख्या हिन्दुओं की पीढ़ा प्राप्ति का एक प्रसुत तीर्थ स्थान है, उच्च स्थान की प्राप्ति एक सामान्य पक्षी की भी कवि अपने काव्य की उत्कृष्टता द्वारा कराना चाहता है। कः यहाँ पर व्यभिचारव्याप्त वर्तकार है।

प्रातिमान

शाम्बाकृतस्मिन्सद्गुणिनां प्रोतिभोत्थितः ॥ २

क्योंकि सादृश्य के कारण जहाँ प्रस्तुत में अप्रस्तुत का भ्रम हो जाये, वहाँ प्रातिमान वर्तकार है। कतिपय स्थलों पर कवि ने इसकी चिन्ता किया है :

श्रीशिवोपासना एव दुरक्षणी वास शैवाल मासा

यशोदीर्घा मृतक हृत्पद्मप्रतापतावलेभ्यः ।

वाग्ध्यान्त्या नगनपद्मदीर्घपात्राव्यमाना-

रज्ज्वत्प्रीति तरणितु रणारश्चर्चितु प्राप्सन्ती ॥ २

(२।५)

इसमें प्रथम के पीछे परस्पर मणियों की किरणों की हरी पाश समझ कर प्रत्यक्ष उसकी बचाने का प्रयत्न कर रहे हैं। अतः यहाँ प्रस्तुत पदार्थ- परस्पर मणि किरणों में अप्रस्तुत पदार्थ- हरी पाश की प्रम ही जाने पर ही प्रतिमान बलकार प्रतीत होती है।

ऐसे ही एक और स्वतः पर सादृश्य के कारण प्रस्तुत पदार्थ नायिका के मुक्त में अप्रस्तुत पदार्थ बन्धन की प्रति प्रतीत होती है :

‘ गण्डासम्पुञ्जितमसौर्ध्वरेवयवविम्बं ।
 दृष्ट्वा हृदयस्कटिकमटितं विम्बितं मित्तिमणि ।
 वन्तर्गहं वन्दतश्चैरावृत्तो रीतिरितिः
 केनातोतः पुर इति मिया व्याहरन्तो सतीर्वा ॥

(२१४०)

इस वचन में विभ्रम के साथ साथ भय की भी संभावना की गई है। अतः इसमें स्पष्ट रूप से प्रतिमान बलकार ही है।

संक्षेप वर्णन

उपमेय में उपमान के संक्षेप को संक्षेपवर्णन कहते हैं। कवि की प्रतिभा से उत्पन्न चमत्कारक संक्षेप ही संक्षेप वर्णन कहलाता है।

प्रस्तुत काव्य में इस वर्णन का प्रयोग कतिपय स्थल पर दृष्टिगोचर होता है। यैतिए-

प्राप्ताहम्बा परिपक्वः प्राप्य वा चित्ताहम्बा
मुग्धा स्वस्वार्थेण पतितं वेति तं मां निरीक्ष्य ।
सहस्रिच्छा प्रिय । न हृत्पिताहम्बाति वाप्याहम्बापि
नादाहम्बाप्रपत्तिकरा हृत्पिताहम्बा सतीति ॥

(२१३८)

यहाँ चित्ताहम्बा में स्थित नायक के चित्र को देखकर नायिका संक्षेप में पकू जाती है, उसको चित्ता तथा यमार्थ का भेद ज्ञान नहीं रहता, एक चित्र में जब वह अपने प्रियतम को अपनी चरणों पर स्थित देखती है, तो वह उसको आदास्तु स्थित प्रियतम समझ बैठती है।

यहाँ प्रस्तुत चित्र में नायिका को अप्रस्तुत नायक का संक्षेप उत्पन्न हो जाने से संक्षेप वर्णन है।

निम्नलिखित श्लोक में भी वही वर्तकार प्रतीत
होता है :

‘तत्समीधाश्रित्य हणहणवां शान्द्रसिन्दूहस्यै
तेजःकुं किमस्यधिया चर्चितुं पारमेयाः ।’
(१।६)

यहाँ कोकिल की मक्खी के व्यापार पर ली हुई
रक्त वर्ण के पत्थर (उपमेय) में रक्त किमस्य (उपमान) का विसर
उत्पन्न होने के कारण वही वर्तकार ही है।

वसिष्ठोक्ति वर्तकार

कव्यसाय के सिद्ध होने पर वसिष्ठोक्ति वर्तकार
होता है^१

सबद व्युत्पत्ति के बाधार पर वसिष्ठोक्ति का
तात्पर्य ही है- वसिष्ठय ऽ उक्ति = कर्णात् किञ्चि वात को बढ़ा बढ़ा
कर करना ।

इस काव्य में वह सब वसिष्ठोक्ति की योजना
दिखाई देती है। कतिपय उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं :

निम्नलिखित श्लोक में वसिष्ठोक्ति का सुप्रयोग
दर्शनीय है :

१- शत० प० पृ० २३२ , १०।४६

" शैवासीषण्डुस्त्रिकम्बदा शैवस्त्रैसिंहदा
 नोता कारणं तंकाकिरणीवांशरेखीणु सिन्धुः ।
 वाकीणास्यामलकनिकरेः शोणिविम्रसिकापी
 मन्थि पीना विरज्यतया प्रयसी फेनुवावात् ॥
 (१-७४)

इस श्लोक में विरज्य वता है वाकुल प्रयसी के कल
 धमुरी का वितर जाना तथा कुशता के कारण कटि प्रसिद्ध है कपी का
 सिन्धु ही जाना हत्यादि व्यवहारों का कवि वतिसयीचित्त पूर्ण वर्णन
 कर रहा है एवं पूर्व की किरणों के कारण तप्त, नदी घट पर स्थित
 वाकुल राशि में विमरण करते हुए राखंडों का दुर्बल होना वतिसयीचित्त
 की ही कृपित करता है। निम्नलिखित श्लोक में भी कवि ने वतिसयीचित्त
 का प्रयोग कितनी कुशलतापूर्वक चित्रित किया है :

" वाहस्वच्छा तपासयता च्छवाकस्तनी
 कस्तीक्यूः कपलवना कप्रतीवाहकेता ॥
 (१-६०)

यही सुन्दर एवं स्वच्छ मत्स्य के भेरी है, च्छवाकी
 के समान वलस्वस्वस्फी का, तनी के समान ध्रुवस्त के कस्तीक करने का,
 मुक्त का कपल के समान पानना, केश की शैवाल के समान सम्पन्नना हत्यादि
 उपनय एवं उपमानों द्वारा वतिसयीचित्त का चित्रण करने में कवि उद्वेग
 की उत्कृष्ट सफलता प्राप्तकर्तृ है।

कर्मकृत ऐसी में लिखित काव्य उत्कृष्ट काव्य

सम्झा जाता है। बिना कर्मकार योजना के काव्य जिस कीटि के वन्तर्गत जाता है, उसका मूल्यांकन नहीं हो पाता। अतः कवि उद्बुद्ध ने कर्मकृत ऐसी में अपने काव्य को परिष्कृत करने का जो प्रयास किया है, उसमें उन्होंने किन किन कर्मकारों के द्वारा अपने काव्य को किम्बुञ्जित किया है, उस दृष्टि से कर्मकार योजना में किन किन प्रसृत कर्मकारों का उन्होंने प्रयोग किया है, उनका सामान्य विवरण उपर्युक्त पैरिचर्या के द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

कल्प

पात्रों की ऐनीयमय कानों के लिए कल्प योका बलि आवश्यक तत्त्व है। ऐनीय कालों का मुख्य आधार नीति-कल्प माना जाता है। कल्प में ऐनीय के मुख्य अर्थक अर्थ, तब ही पात्रों का समन्वय होता है। स्वात्मकता के कारण ही कल्प पात्रों के अस्तित्व होता है।

प्रायः विप्रसन्न रूप के लिए यन्त्रात्मकता - कल्प तथा कल्पण रूप के लिए तिलिणी कल्प प्रयुक्त किया जाता है। कवियों की सम्मति है कि विप्रसन्नकृत कल्प योका करने से, व्यर्थ-विषय में समीक्षा का बाधो है ही अतः कवियों को आनन्दित करने की उक्ति यह बाधो है।

तब तथा प्रवास की दृष्टि से विरह-वर्णन में प्रयुक्त यह कल्प निरान्त ही उपयुक्त है, क्योंकि कहा भी गया है -

‘ प्रापद् प्रवास व्यसने यन्त्रात्मकता विराजते । ’ १

यह कालों में विप्रसन्न वीर कल्पण रूप के निम्न की अधिकता होती है। तथा विरही नायक तथा नायिका का ऐनीय कालाधिक उचितता से परिपूर्ण होता है। प्रायः कहा जाता है कि जो व्यक्ति कालाधिक आताप करता है, अथवा जो प्रीतिक के कारण अपनी प्रिय से प्याराताप करता ही तो वह ठहर ठहर कर अभी भी कल्पना अभी उच्च स्तर में, अभी सुखान्त पात्रों को प्रकट करता

है।

सर्वप्रथम चन्द्र मेघदूत- काव्य की पैदाइशका काल में ही तिल कर काश्मिर ने संस्कृत काव्यों के लिए विषय के साथ साथ काल का भी निर्दिष्ट कर दिया है। इस प्रकार सभी पद्यगीत कवियों ने अपने संस्कृत काव्यों में पैदाइशका काल की ही प्रशंसा किया है। इस प्रकार पैदाइशका काल की उक्तिः॥॥॥॥॥॥॥॥॥ एक परम्परा है निर्धारित की गई है।

वर्ण

“ पैदाइशकाऽनुधिरसनैर्वायिनी त्री न युग्मम् । ”

इस काल के प्रत्येक पाद में १७ वर्ण एवं चार चरण होती हैं। प्रत्येक चरण में ३२ः एक कण, एक मण, एक नमण, दो तमण तथा अन्त में दो गुरु वर्ण होती हैं। चार चः, वात वर्ण पर यति होती है।

प्रत्येक चरण के आरम्भ में चार गुरु वर्णों के उच्चारण के स्वर का जो भी उच्चारण होता जाता है, जो वह भाववर्धित स्त्रीः स्त्रीः उठती हुई वर्णों का मण प्राकृत चित्र प्रस्तुत करता है। तदनन्तर एक साथ हैः उच्च वर्णों का विन्यास चित्र उच्चारण विपरीत होता है। वह भाव के प्रवाह का स्वयं चरण प्रस्तुत करता हुआ, अन्त में उच्च गुरु वर्णों के संयोग द्वारा वात के साथ साथ भाव की भी उदात्ता हुआ सम पर से जाता है। स्वर की आरोह अवरोह

प्रक्रिया में व्युत्पत्ति व्युत्पत्ति व्युत्पत्ति रूप धारण कर लेती है।

कम्ही सपानाँ के बाधार पर विनयानुस्य
कवि उदय ने सधुर्ण को० सं० काव्य में पेशाकामता रूप का ही प्रयोग
किया है। क्या -

‘सधि सुहृन् सह दयितया कोऽपि खेदितमानः ।

सधितु-हृन् सह- दयित-या कोऽपि-खेदित-मानः ॥’^१

इस संक्षिप्त में सत्तरह बरार हैं जिसमें प्रमत्तः
एक मगण, एक मगण एक मगण की तगण तथा संक्षिप्त दो बरार गुरु
हैं। तथा प्रमत्तः बीस, इडे एवं सधित्व बरार पर यति है।

सम्प्र को० सं० काव्य में प्रयुक्त यह रूप कव्यधिक
भुक्ति फीवर एवं फेस , गेय एवं सावजन्य व साहित्य के परस्पर दृष्टिनीपर
होता है।

१- को० सं० १।१

सुविता-संग्रह

किसी भी उपदेशात्मक वाक्य को सुविता कहा जाता है। कवि उदयक के को० सं० काव्य में स्थान स्थान पर वाचपूर्ण सुवितयाँ दृष्टिगोचर होती हैं। इन्होंने अपनी काव्य प्रतिभा के को० सं० में वैदिक, धार्मिक, नैतिक तथा जीवनोपयोगी सुभाषित सुवितयाँ अनेक विभिन्न प्रकार की सुवितयाँ संकलित की हैं। किन्तु स्वयं प्रयुक्त सुवितयाँ सास्त्रीय नहीं हैं। प्रायः कवि उन्हीं सुवितयाँ का प्रयोग करता है, जो नीति एवं उपदेशात्मक श्रेणी में उपलब्ध होती हैं, किन्तु उनकी सुवितयाँ सास्त्रीय श्रेणी में नहीं मिलती, फिर भी कल्याणकारी सुमनस्क वाक्याँ का प्रयोग इन्होंने अपने काव्य में सब - सब सुन्दर ढंग से किया है। कहीं कहीं कवि उदयक ने जीवनोपयोगी कई सुन्दर विचार भी व्यक्त किये हैं तथा कहीं धार्मिक उवितयाँ भी प्रस्तुत की हैं।

सम्प्र को० सं० काव्य में उपलब्ध कवि उदयक द्वारा संकलित सुविता संग्रह निम्नलिखित हैं :

१- कस्ती तत्सर्वं प्रभवति परिच्छिद्यमानास्वर्यचिन्धी ॥ (१- ४४)

२- कान्तारानि सति विकसिन्ति कः पुनस्तिष्ठन्तु मोक्षे ॥ (१-३३)

३- कान्तोदन्तः सुसुप्ततो विप्रयोगार्थितानां ।

प्रायः स्त्रीणां भवति किमपि प्राणसन्धारणाय ॥

(१-२०)

४- चान्द्री मूर्तिः कथं कतौ जायते केन रात्रौ ॥ (२-२०)

- ४- विद्या वैवी नतिरिक्त् ॥ (१११)
- ५- तेजामिवा स्तुतिष्णु न भवेत् कस्य बभवे पवित्रम् ॥ (१-४५)
- ७- दीनापन्न प्रणयमृते दीर्घमृतेत्य ॥ (१-६)
- ८- बन्धुभाणाद् बह्वसिर्मा नापरं त्वद्विधानाम् ॥ (१-२०)
- ६- भूयान्मर्मा बहुपि तथा विप्रयोगप्रसंगः ॥ (२-६६)
- १०- पूर्ववात् प्रीत्यै तस्य च समये केन हि प्रभुणाम् ॥ (१-७५)
- ११- विरहेषु तु त्रिभुवनमिदं वायते त्वन्मयं हि ॥ (२-६७)
- १२- राखवन्मिन् किमपि बलसिस्वावयोः प्रभवत्सी ॥ (२-१६)
- १३- सौन्दर्यरत्नसुखयो । कृपाकाः सहायाः ॥ (२-५१)
- १४- धर्मिण्यायां विषयि कलसावृत्तिरार्ति हि हृते ॥ (१-४०)
- १५- सन्धद् प्राप्य यदि न भवेत् जन्मना किं मृतेन ॥ (१-५०)
- १६- स्तुत्यस्त्रीतिर्भवति हि वनी राजनप्रावपिनि ॥ (१-२६)
- १७- स्त्रीणां वेष्टास्त्विति हि विरहोत्पासु दिङ्मात्रेण ॥ (२४३)
- १८- स्वात्मवशेः सुपुङ्गवा रचापुलानां पुताय ॥ (१-५६)

प्रकृति चित्रण

कौ० सं० में कवि उदयन ने प्रकृति-चित्रण को विस्तार करने में अपनी कुशलता का प्रगाढ़ परिचय दिया है। उन्होंने प्रकृति के दोनों ही पक्षों का बड़ा हुदयकाशी चित्रण किया है। काव्य के पूर्व भाग में बाह्य प्रकृति एवं उत्तर भाग में मानव प्रकृति के चित्रण का प्राथम्य पाया जाता है। बाह्यप्रकृति के प्रति कवि का अन्तर्मुख बुरान दृष्टिगोचर होता है। कवि ने प्राकृतिक दृश्यों का ऐसा संश्लिष्ट एवं व्यंग्यमय चित्रण किया है कि हमारे मानसिक नेत्रों के सम्मुख उनका एक सन्तुष्ट चित्र ही उपस्थित हो जाता है। समस्त काव्य में कवि ने मार्ग वर्णन प्रसंग के अन्तर्गत प्रकृति के विविध दृश्यों का संगोपन वर्णन किया है। प्रस्तुत काव्य में यदि वे अन्त तक प्राकृतिक सौन्दर्य की धारा निरन्तर प्रवाहित होती रही है।

काव्य में कहीं नदियाँ तथा फलों के वास्तव्य विविध नगरों का^१, कहीं सप्त वायुपुत्र पर कहुली हुई कोकिल का^२, तो कहीं उषानों में स्थित पुष्पाँ, पस्तुकी पर गुप्त कही हुए लोहपुत्र प्रभृत् समूह का^३, कहीं सुरम्य नदी तट पर स्नान करती हुई सुन्दरियाँ का^४, तो कहीं सुरम्य नदी तट का^५, कहीं ग्रीष्मकाशीन नदी तट का^६,

१- कौ० सं० ११, २०, २७, ४१

२- वही , १५ , १६, २१, ४०

३- वही , २४

४- वही , २१

५- वही , ३५ , ७२

६- वही , ७४

तो कहीं गम्भीर गर्जन से युक्त विप्लव के कारण जमकते हुए भवों का^१,
 कहीं नृत्य करते हुए पसूरों से युक्त बाटिका का^२, तो कहीं प्रभातकालीन
 एवं सन्ध्याकालीन रमणीय दृश्यों का^३, कहीं रात्रि के गहन अन्धकार
 का^४, तो कहीं महासामर की तरंगों का^५ तो कहीं विकसित कमल एवं
 कुमुदिनी पुष्पों से युक्त जलालय का^६, तो कहीं सुवर्णमय वातवाह से युक्त
 साहं का^७, तो कहीं विरही जलवाक पक्षियों का^८, कहीं बन्धु भूमि का^९,
 तथादि प्रकृति का कौह भी दृश्य ऐसा नहीं है, जो इस काव्य में उदण्ड
 की सेलनी से व्यूढा रहा हो ।

१- की० ६० , ३४

२- वही २- ३४

३- वही १ - ५६ , ६० , ५५ , ५६ , ७२

४- वही , ५७

५- वही , ५८ , ६३

६- वही , ५८

७- वही , ६१ , २-२५

८- वही , ६० , २- ५१

९- वही , १- ३१, ३२

इन सभी प्राकृतिक रमणीय दृश्यों को कवि ने कल्पित सरप, सरस एवं मनोरम रीति में चित्रित किया है।

प्रकृति की सलाम, सीताजी का सखि विवर्ण काव्य के प्रारम्भ में ही दृष्टिगोचर होता है।

शुद्ध वर्णन प्रथम में कुराव बसन्त के विवर्ण में कवि का चित्र रमता हुआ प्रतीत होता है, क्योंकि काव्य का प्रारम्भ ही बसन्त शुद्ध है हुआ है। यह शुद्ध में बसन्त ही कल्पित सुवाणी एवं मादक शुद्ध मानी जाती है। वैवनासारम्भ में बसन्त का वागमन होते ही वाग्मूला मयूरियों से युक्त ही जाते हैं एवं उषाओं में सर्वत्र वृद्धा नूतन पल्लवों एवं पुष्पों से परिपूर्ण हो जाते हैं। इन उषाओं में स्थित वृद्धों की सीताजी, साताजी, एवं पुष्पों, पल्लवों पर कोकिल मधुर स्वर में वैष्णव राग वातापने लगती है। एवं मधुर नूतन कृति हुए प्रमद मधुर पुष्प प्रवाहित मकरन्द रस पान में संलग्न हो जाते हैं। निम्नलिखित श्लोक में बसन्त शुद्ध में विकसित होने वाले कुराव वृद्धा समूह पर महराती हुई मयूरियों का शीघ्र विवर्ण दर्शनीय है :

“ स्निग्धस्कन्धस्तमकुरावः किञ्च तस्योपकण्ठे

कूक्कुभुग कुरावस्तल्लवः कृत्स्नपाणायाः । ” (२।१७)

१- की० सं० १- ४

२- .. २- -५१

३- .. १- ६, १३

जब क्लृप्त में पुष्पाँ की सुगन्ध से सुख होकर वायु, जारों और प्रवाहित होने लगती है।

मधु मास में पुष्पाँ, पत्तियाँ की समृद्धि के साथ भ्रमर एवं भ्रमरियों का गुंजार सुनाई देने लगता है। भ्रमर मधु का उत्पन्न होभी माना गया है क्योंकि वह काकुता के कारण वह स्त्रियों के मुँह की ही कस्त सम्म कर उन पर फेराना आरम्भ कर देता है, देखिए-

“ पायै पायै मुत परिमलं मोहनं यत्र कत्ता :

प्रायोऽपाश्चिपत्सुतमानेव विधन्ति कुमान् । ” (१-२३)

मधु मास का यह उत्कृष्ट सौन्दर्य विरही क्लृप्त की ओर भी अधिक विरहित कर देता है।

जबन्त क्लृप्त में विरहियों की यह मनः स्थिति हो जाती है कि वह प्रकृति के किसी भी दृश्य को अपने विरह से पूर्ण नहीं देख सकते । कतिपय उदाहरण दर्शनीय हैं :

“ तं कृजन्तं कलमधुरया पंचमस्वान मंगया

कान्तातावस्मरण विवतः किञ्चिदा राहुकेय । ” (१।५)

जब काल में नूतन उदित पुष्प पत्तियों पर झीड़ा करते हुए भ्रमर मँडल दुःख- पीड़ित क्लृप्त क्लृप्ति की उत्पन्न करते हैं :

१- को० सं० १- ५

२- वही १, ५, ८

तर्जकमान् वयसुतभुजो ज्वालमासाकटासन् ।
 वल्गुभुजान् वनविटपिनी माधुरान् पल्लवीधिः ।
 दुग्धा दूरावनुमित्तमामुष्णसीतिः समीरः
 धन्विध्याया विपदि सहावृत्तिरार्ति हि पूते ॥ (१४०)

मधुमास में बहुत बूटों से उत्पन्न सुगन्धित बाँसु
 एवं मलय पर्वत के स्पर्श से खान्दीति, प्रमदगुण से युक्त सदा वल्गुरिया
 तथा तीक्ष्ण मीर समीर विरहीन को काम पीड़ित करने लगती है :

काते वास्मिन् कन्दलितः कम्पिताग्र प्रवाताः ।
 कप्रा वल्लयः किमपि महता बुम्भिता वलिनीन ।
 किंविदष्टाधरकिञ्चनया प्राह्वयया भोगकाते
 धीत्तुर्वाणा धुक्स्तर्त्ता त्वा प्रिये । स्मारयन्ति ॥
 (१४१)

काः वसन्त का वर्णन करती समय कवि का
 मन प्रकृति में उठाना नहीं रमा, जितना कि मानवीय विरह दुःख वर्णन
 में । प्राकृतिक दृश्यों का मानवीय सौन्दर्य से हृत्किष्णुणं सादृश्य स्थापित
 किया गया है।

वसन्त ऋतु के उत्तिरिक्त अन्य ऋतुओं का
 चित्राकन भी कवि ने अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। वसन्त ऋतु के अन्तर
 ग्रीष्म का आगमन होता है। सूर्य की उष्ण किरणें अत्यन्त पीताकारी
 हो जाती हैं। काव्य में वर्णित ग्रीष्मकालीन नवी तट का एक दृश्य देखिए

“ क्वाहीपञ्चुलिकम्पता केतुप्रतिष्ठा
नीता कारयं तप्तकिरणीवशिरेषेणु सिन्धुः ।
बाकीर्णास्यामलनिकरैः नीणि विप्रशिकीणी
मन्थे दीनानि विरहदशया प्रयसी भवनुयायात् । ” (१।७७)

ग्रीष्म के पीछे प्रवाह से जब जल-मय सतप्त हो उठता है, तब वर्षा का अभिमान होता है। मेघ जब वृष्टि कर जलित समीर से सभी के चित्त को आनन्दित करते हैं एवं उपवन की भी हो जाती है। को० ध० काव्य में वर्णित वर्षाकालीन वाता से युक्त प्रकृति का दुरम्य चित्र देखिए -

“ यत्रोपाने मसि नित विताडुबपुषि वलणा
भूणि वग्ना भ्रमरपटसोनि विनिष्ठाः पयोदाः ।
वापीष्वम्बुधिरुधिरमिण्डुधुवन्ति स्वकाते
लोपानाग्रस्फटिककिरणोज्ज्वल्यणा प्रिलितानि । ”
(२।६)

वर्षाकाल में विप्लव के कारण नमकी हूर नम्योर मेघ गर्जनों की हुनकर आनन्दित हूर मयूर अपने पैरों की फैला कर नृत्य करने लगते हैं :

“ वृष्ट्वा वीज्वा कनकफिता वीजरीकृतवण्डात्
पदाब्जवायुस्रवितनमीभागमुत्तमपरी त्वाम् ।
विद्युत्तन्त्रं नवकलधरं मन्यमानाः सतीर्ष
नर्तिष्यन्ति प्रियस्रव । वलतिषे कभारा मयूराः । ”
(२।३४)

इस प्रकार प्रत्येक शब्द अपनी अपनी विशेषताओं से केवल प्राणी की मुग्ध करता ही रहती है।

विविध शब्दों के वर्णन के बतिरिक्त कवि ने प्रसंगवश अन्य प्राकृतिक चिजों को भी चित्रित किया है।

की० सं० में उदण्ड ने जिन स्थलों पर प्रकृति तथा नारी में समानता प्रदर्शित की है।

निम्नलिखित श्लोक में कवि ने घुण्ठी नदी का वर्णन करते समय नदी में नायिका का आरोप किया है। नदी तथा नायिका के तिर बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव वाले विशेषणों को प्रयुक्त कर दोनों में सादृश्य स्थापित करने का प्रयास किया है।

वाहस्वच्छा सफरनयान्ध्रवाकस्तनीः

कल्सीक्षुः कम्पदना कप्रौवातकीता ।

संक्षिप्त्वा स्यात् सरसम्भुरा सानुकुलावतीर्ण

घुण्ठिहन्नेरिति हि सरणिः कापि गाम्भीर्यादाम् ।

(१।६०)

इसी प्रकार कवि ने प्रकृति के विविध तत्त्वों एवं नारी के वेग प्रयोगों में किसी कृशता के साथ साम्य स्थापित किया है :

“ हुम्बन् बिम्बाधरमिव नवं पल्लवं श्रीपुगवं

प्राप्तास्तैजः स्तनव्य नव कोरु कामवारी ।

भीक्ष्तादि त्वं क्वापि समये तत्र पाकन्दवस्त्रीः
 कान्तारानि सति विकसिते कः पुनस्त्वत्पुनीष्टे ।
 (१।३३)

छमै कवि ने नायिका के कंधर की तुलना विष्णु
 फल के स्तन- फल की कसियाँ के तथा काँटा की लता तुल्य ही माना है।
 काव्य में ऐसे कने उदाहरण वर्णित है।

कवि उदण्ड के इस ग्रंथ में एक महत्वपूर्ण विशेष-
 णता यह भी दीस पड़ती है कि - वह नारी सौन्दर्य तथा प्रकृति सौन्दर्य
 को एक साथ देखने की साहसा करती है। जिस प्रकार कासिदास ने अपनी पद्य-
 रूत में नारी में प्रकृति तथा प्रकृति में नारी को देखा है। उसी प्रकार इन्होंने
 भी प्रकृति के पदार्थों में नारी को देखा है एवं नारी के विभिन्न अवस्थाओं
 की तुलना प्राकृतिक पदार्थों के आधार पर की है। अतः निम्नलिखित श्लोक
 में कवि ने नायिका के विभिन्न तीन प्रत्येकी की सुन्दरता का वर्णन के तिर,
 प्रकृति के विभिन्न पदार्थों का वाक्य लेकर कितनी निपुणता के साथ साम्य
 स्थापित किया है।

या कान्तिरकेवप्रवति कनकं तन्पुलं केतु क इन्दुः
 या केतु बिम्बाधरमधुरता तिक्ततामेति माञ्जरी ।
 या वा तस्या यदि अनुसता मासती सोह तुल्या
 ती केतुह कनकवस्तीम्सम्भयोः क्वापि डम्भः ॥
 (२। २२)

इन उदाहरणों के आधार पर यह कहा जा
 सकता है कि प्रकृति के सादृश्य में ही मानव के संतप्त हृदय की छविना

मिल सकती है। क्योंकि विरही नायक सदा में अपनी प्रिया के कर्णों की, कमल में उसके मुख की, नदी की चञ्चल सहरों में उसके मू विलास की, हरिणी के चञ्चल कानों में उसके नेत्रों की और पैर में उसके केश कटाप की, किलबाफल में कपूर की एवं स्वर्ण कदली स्तम्भ में कनक प्रसि की छाया देत वह विरह में भी साम्प्रत्यना पाता है। इस प्रकार प्रकृति चीन्चर्य की देत कर अपनी दुःखी हृदय को वात्स्यायन देता है। कहीं कहीं कवि ने प्रकृति चित्रण करने के लिए

कतिपय ----- कर्तकारों का भी वाक्य लिया है। यथा-
उपमा, उत्प्रेक्षा, ^१ रूपक ^२ वादि ।

विभिन्नसिद्धि रसिक में विभिन्न उपमानों के द्वारा उपमेय- भूत नायिका के कर्णों का चीन्चल नायक ने कितने सुन्दर ढंग से प्रतिपादित किया है। केश भार, मुख पद्म, हृत्, कस्तुर, रीशरावि कटिभाग, कनक, उलू वीर चरणों की कृत्रिम उपमाएँ देती ही जाती हैं :

‘साम्प्रामोदस्तिमिरनिरस्यन्द्रमा निष्कर्षकः ।

तेतो हेमे प्रमरपटलीकीसितो व्योम्भागः ।

क्रमे चर्च मृदु करि तन्मदभक्त्ये सतीति

सर्वै रसन्मदनघटितं चीन्म्य । संभुय वाभूत् ॥

(स २९)

इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी कवि ने प्राकृतिक तत्त्वों को उपमान में रूप में प्रस्तुत किया है।

प्रकृति का कोई भी ऐसा पक्ष नहीं जो प्रस्तुत

१- को० सं० १।६०

२-

काव्य में कवि ने चित्रित न किया हो। एक एक करके वह प्रसंगपर सब वस्तुओं में प्रकृति के नाना प्रकार के दृश्यों एवं सुसम्पन्न स्थलों की चित्रित करते चले गये हैं। कुछ रम्य प्राकृतिक दृश्य यहाँ प्रस्तुत हैं।

प्रातःकाल

इस प्रस्तुत काव्य में कवि ने प्रातःकालीन जीवन की यात्रा तत्र वर्णित किया है। उषा का जागृत सन्तप्त प्राणियों में जगदीश्वर, प्रेरणा एवं उत्साह का संसार करने वाला होता है। निम्नलिखित श्लोक में इसका स्पष्ट चित्र मिलता है :

प्राप्सोन्मेषी प्रमत्तस्त्विह प्रसन्नवागाग्निरुत्प्रे,
वासाशीकस्तकलानिरे भानवीय पश्यते ।
प्रस्थातुं त्वं पुनरपि सते प्रमेयाः प्रभाते
स्वात्मवर्तेतः सुहृदुपकृता त्वादृतानां सुताय ॥

(१।५६)

प्रातः होती ही कम्पन विकसित हो जाती है। नींद सुप्तों की झोड़कर कम्पन पर फहराना प्रारम्भ कर देती है। नींद रात्रि में विद्युत्त हल चक्रवाक, युक्त उत्प्लुक्ता व लीलाता से परस्पर बैठा-सिंगन बह हो जाती है :

इस ही प्रातःकालीन वाता से युक्त एक सुन्दर चित्र काव्य में प्रस्तुत है :

तीर्त्वा रात्रि विरहमही तीव्रतायां कथयितुं
 दृष्ट्वा भानीः किरणमहर्णं बभूवरात्रीदिगन्ती ।
 प्रत्युषाम्ही त्वरितमक्तां शिल्प्यते भाग्यहीने
 चाभापि स्पृहयति मनो हन्त कारव्यह्ने ।

(२।४५)

सूर्यविषय

सूर्यविषय की जाने पर प्राकृतिक सौन्दर्य अनुभव
 की जाता है। वाकाल साक्षिमा की धारण कर लेता है, एवं कमल पुष्प
 विकसित हो जाते हैं। देखिए-

“ एवताप्यद्माः क्षुब्धतयनीसाम्यमापमाना
 विजायन्ते स्फुटमहिमधामोदये ब्रुम्भमाणी ।

(३।८६)

यद्यपि दोपहर काल में सूर्य क्षीप्त हो उठता
 है। सूर्य की उष्ण किरणों की तपन असहनीय हो जाती है, कवि ने
 की० सं० में दोपहरकालीन सूर्य का एक चित्र लीखा है :

“ वक्त्रुर्वक्त्रं तमसि भवती नैव दूरयेत् रात्रा-
 वाक्-वाहूर्न भवति नियमव्याकृता वाचरे सा ।
 सह्यस्पर्शं सति रविकरे तापसह्यस्मरार्ति
 मत्सन्देहं मणिवह्निकामाश्रितः भावयेयाः ।

(२।४५)

संध्याकांत

संध्या कल्पन्ति सुहावनी प्रसीत होती है।
 इस समय भी नम- पण्डित रक्त वर्ण का प्रसीत होने लगता है। सूर्य अस्तावस
 की ओर गमन करने लगता है। पक्षि पक्षी अपनी घोंघरी में कोछाहत
 ज्वनि के साथ विनाम हेतु जाने लगते हैं। रत्नैः रत्नैः लोक में क्रीडार
 प्रसक्ति होने लगता है। ऐसे ही संध्याकांतीन सौन्दर्य के युक्त एक निम्न-
 तिलिप्त श्लोक द्रष्टव्य है :

विष्वक्कीर्णरिव पशुपतेः कन्धराकान्तिपुत्रि
 र्वातासीके काति तिमिरव्यापनीतावकुम्भिः ।
 विभ्रान्तः सन् ध्वजन विपुले वृक्षशालावृष्टम्बे
 तां तत्रैव दापय रक्तो भ्रान्तविस्त्रस्तपदाः ॥

(१।५७)

रात्रि

संध्याकांत के बाद रत्नैः रत्नैः सर्वत्र चन्द्रकार
 प्रसक्ति होने लगता है। तदनन्तर रात्रि का आगमन होता है। वाकांत
 में उदित हुवा चन्द्रमा अपनी ज्योत्स्ना से रात्रिकांतीन वाता को दिगुणित
 कर देता है। चन्द्रोदय होती ही सागर किनारे सेने लगता है। सरोवर में
 उत्पन्न क्षुब्ध पुष्प विकसित हो उठते हैं तथा चक्रवाकी से विमुक्त हुए चक्रवाक
 पक्षी विरहाग्नि में दग्ध , रोते हुए ही रात्रि को व्यतीत करते हैं। प्रस्तुत
 काव्य में उदण्ड द्वारा चित्रित रात्रिकांतीन एक दृश्य देखिए -

“ माघर्षुणिः कृमुत पवनस्तर्ज्यमानस्य घोरे
 रातङ्काल्ये घराधि सुहृती हा निशीथे निशीथे ।
 निद्राभुके काति रुचति श्वासचिन्ताबुधो मे
 छिन्वन्तश्चटुनयने । कथाकाः सहायाः ॥ ”

(२।५१)

रवि तथा शशि का उत्पत्ति स्थल वाकाश
 का भी सुरम्य चित्रण प्रसन्नवश कवि ने अपने काव्य में वर्णित किया है।
 वाकाश मार्ग का एक अनुपम चित्र द्रष्टव्य है :

“ वीचिदिपिप्ता एव सुरधुनी वात शैवालमाला
 यत्रीदीर्णा मस्तकहृत्पद्मप्रताला तलेभ्यः ।
 बाष्पान्तर्या नमनपदवीदीर्घपान्थायमाना
 स्वेकप्रोथं तरणितुलाश्चर्वितुं प्राप्सन्ती । ”

(२।५)

फांत

काव्य में वर्णित फांतों एवं फादियों के
 सुरम्य चित्रों द्वारा कवि उद्विग्न की कृतज्ञता का परिचय मिल जाता है।
 काव्य का प्रगम शरीर ही देखिए-

“ शैलामण्डितायां कांक्ष्यां कम्पातट भुवि तयानन्विता
 बुध्यते एव । ”

१- की० सं० (१ । १६) - (२।२१)

छमें पर्वत से सुशोभित कावेरी नगरी के सौंदर्य को चित्रित किया है। प्रस्तुत काव्य में कवि ने केवल एक साहस्य पर्वत का ही वर्णन किया है।

कावेरी नदी का उद्गम स्थल, साहस्य पर्वत की प्राकृतिक रमणीयता से युक्त एक सुरम्य चित्र देखिए-

‘दृश्या दूरे तपनु सहरी संपन्नार्जुना
सा कावेरी मदकलभारी सद्यन्तावस्य
मेघश्यामी भुजगत्यमी मेदिनीहार्यष्टे -
मंथे यस्या मृतक ह्य प्रप्यती गिराथः ॥
(१-३५)

नदी

नदी वर्णन प्रस्तुत करने में कवि ने वास्तव-
रिक चित्र प्रस्तुत किये हैं। अतः उद्घुष्ट कवि ने को० सं० में लोक जलकानों
के माध्यम से नदी के सुरम्य चित्रों को प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत काव्य में कम्पा, लीर सिन्धु, नीवा,
कावेरी^४, निखा, वाह्णयो^५, सुर्णी जयादि नदियों का मनोरम चित्र

१- को० सं० १ , २

२- वही २३-२४

३- वही २७

४- वही ३५

५- वही ४२

६- वही ६०

प्रस्तुत किया है। निम्नलिखित श्लोक में परिव्रज की तीर प्रवाहित होने वाली तीर- सिन्धु की प्राकृतिक रमणीयता का सुन्दर चित्र भी देखिए-

बासापाशासुधतिल क्लिप्तामात्रयन्त्रान्तवैगः
 कृतीन्पील्लमुल्लुङ्खली वामरान्दी क्लिप्तामिम् ।
 प्रत्यस्यष्टी विकल्कमतीक्ष्णन्धिमाध्वीकपानात्
 क्षीबक्षीक्ष्णमस्तृणीषि विता क्षीरसिन्धुम् ॥
 (१-२१)

काव्य में वर्णित खेतारण्य के निकट, शिव मंदिर के समीप बहती हुई निला नदी संध्याकाल में नृत्य करते हुए देवता के मस्तक से गिरती हुई गंगा सदृश्य प्रतीत होती है :

पार्श्वे यस्य प्रवहति निला नाम कल्पोत्पिनी ता
 संध्यानुत्सप्रपिण्डु पतिता मस्तकज्वाह्वनीव ।
 नाबासी प्रणयि रमयाक्रान्तदीर्घध्यमास्ती
 कृषे यस्याः कृषतयत्तरयाप्स धाम किञ्चित् ।
 (१।७२)

उपर्युक्त श्लोक में निला नदी के सम्बन्ध में क्लिप्ता सुन्दर उपमा प्रस्तुत की है।

समुद्र

प्रस्तुत ग्रंथ में कवि ने सरोवर एवं समुद्र के विविध रम्य दृश्यों को सरस एवं सुरम्य शैली में चित्रित किया है। काव्य

परिमयी महासागर का रमणीय चित्र कौनक रत्नों पर चित्रित किया गया है। कहीं कहीं काव्य में वर्णित महासागर की प्राकृतिक रमणीयता बरबस ही मन की मोह लेती है :

उन्मयज्ज्वलिः पुनरिव ज्वात् पलावद्भिर्गिरीन्ध्रं
 वृन्दैर्नर्वां भुजपटलिकीर्तुडामरीणांरुयमानम् ।
 सस्पीजातेः सयनसवनं पुष्पाटं पुरा रेः ।
 पाकस्थानं निस्त्रिमरुतां पश्य नाराजिधानम् ।
 (१।६२)

निम्नांकित श्लोक में समुद्र- तट- तटों का एक दूरस्थ चित्र देखिए -

“ सुवताजातेध्वंसपुलिर्न धीचिमाला विकीर्णः ।
 कूटाञ्चनं कृष्णमितरुस्निग्धमालम्बमानः । ” (१।६३)

जलाशय

काव्य में यह तब कवि ने जलाशय के दूरस्थ दृश्यों को भी प्रस्तुत किया है। स्वकी हंस, ब्रजवाक जत्यादि पक्षियों का ओढ़ास्थान माना जाता है। शरीर में उत्पन्न कृमुद एवं कम्पन पुष्पों के छिलने से रसपान करने में शैलग्न प्रेमर मँहस, नृत्य करते हुए से प्रतीत होने लगते हैं। निम्नांकित श्लोक में जलाशय का एक रमणीय दृश्य भी द्रष्टव्य है :

१- कौ० सं० १ । ५८

२- वही ६०

३- वही २।५१

“ सीतावापीलसति लसिता तत्र तीपान मार्गं
 माणित्याशुचरुण स्ततस्मिशनासीकचण्डा
 यत्रायान्त्याः पयसि विमले स्नातुमस्यतिप्रमाया
 मन्थे यानाम्यस्यविधयेपत्तिकास्तावसन्ति ॥ ”

(२।१३)

जल-श्रीढा

कवि उदण्ड ने प्रकृति चित्रण के अन्तर्गत जल-
 श्रीढा के मनोरम दृश्य भी चित्रित किये हैं। जल श्रीढा प्रसंग चित्रण में
 कवि ने कहीं कहीं जलकारी का वाक्य लेकर दृश्यों को जीवंत और भीतरी
 भाव्य बना दिया है।

निम्नलिखित श्लोक में जूण्याँ नदी में जल-
 श्रीढा करते हुए प्रेमी युगल का एक चित्र देखिए :

“ कञ्चिच्छिते स्फुरति चपलापानि । जूण्यां कदाचित्
 प्रस्तोत्सवं ध्वजनकं धौत्रविम्बाधरोष्ठम् ।
 स्नानान्ते ते मुसमुषसि प्रेक्षमाणी मयि द्रा
 ग्वदादीदग्रे पयसि पुनरप्यावयोर्मज्जनं तत् ॥

(२।६२)

वन-भूमि

वपने आ प्रस्तुत काव्य में कवि ने कतिपय

स्थलों पर वन्य भूमि एवं वन- विहार के रम्य चित्र भी चित्रित किये हैं :

भूयोगञ्जनवनपदभिर्षु च त्वमुत्सङ्गव्यय बीजा
नालीकेयास्तत्सहरिणीनेकता पिङ्गिता नि ।
कान्ताराणि प्रवशायेरिङ्गन्गुज्याकतापेः
कृषि कृषि कथित तवदन्तलीला यितानि ॥

(११३१)

उद्यान

कवि ने कौ० सं० काव्य में तीन स्थलों पर विविध वृक्षाँ, सतावीं तथा पुष्पाँ के युक्त उपवनों का मनोरम चित्र भी प्रस्तुत किया है। उद्यान भी का वर्णन कवि ने बसन्त ऋतु के अन्तर्गत ही किया है। क्योंकि बसन्त ऋतु में पुष्पाँ एवं पल्लवाँ की समृद्धि के साथ ही प्रेमर समुहों का गुंजार सुनाई देने लगता है। विकसित पुष्पाँ से तथा भीरों से शोभा प्राप्त सतारों का भी सुगन्ध फैली है। वृक्षाँ की शाखाओं पर कीकट बादि विविध पक्षियों की कसरत ध्वनि होने लगती है और पुष्पाँ की सुगन्ध से युक्त वायु चारों ओर बहने लगती है।

प्रस्तुत काव्य में चित्रित , पक्षियों की मधुर कसरत ध्वनि से युक्त , पुष्पाँ एवं सतावीं से सुसज्जित उपवन की कल्पना भी दर्शनीय है :

पक्षिस्वानः पटुमकलैः स्वागतानि भुवाणा

१- कौ० सं० ११३२ , ३३

२- वही १ , १५

२ , ६ , १४ , १५ , १६ , १७ , ३५ , ५३ , ६३ , ६५

व्याकीर्णाध्योः कृष्णमधुमिवीज्यन्तः प्रवातैः
तत्रारामाः सुरमिसन्निर्वा र्त्वा वसन्ते । मानयेयु-
स्तुत्यप्रीतिर्भवति हि जगो राजद्राजपति ॥ १

(१।२६)

नगर वर्णन

कवि उदण्ड ने को० सं० काव्य में मार्ग वर्णन
प्रसंग के अन्तर्गत प्राकृतिक रमणीयता से युक्त कुछ विशिष्ट नगरों के प्राकृ-
तिक सौन्दर्य का चित्रण करने में अग्रिम कीर्तन प्रदर्शित किया है। प्रथम श्लोक
में वर्णित प्राकृतिक रमणीयता से युक्त कान्ची की शोभा भीदर्शनीय है :

“ शैलबामण्डितायां कान्च्यां कम्पातटं सुवितयानन्वितो न
कुञ्चते स्म ॥ (१।२)

एक तन्मय स्वतः पर, सरस, बहस गुणाँ से
परिवृत एवं लघन वाप्रवृत्त से युक्त तिरुवी के निवासे स्वतः वलर्यक का,
नैसर्गिक सौन्दर्य भी देखिए :

“ उडुडीयास्माद् बहसस्ररसात् सत्वमुषानवेलात् ।
प्रादक्षिण्याद् ब्रजं परिहरे पुण्यमैकाग्रवृत्ताम् ।
भुजे यस्य प्रकृतिसुभगे सुवतर्कसास तीर्था
देवः साक्षादसति वलर्यकान्द्वयशब्दद्रुहः ॥

(१।१८)

१- को० सं० १ , ११, २०, २७ , ३१

२ , ३

निर्माकित श्लोक में कवि ने पक्षियों की
कसरत ध्वनि से युक्त, सागर के तट पर सुपारी की लताओं से समृद्ध,
बाह्य परत के नीचे स्थित दृश्य लीखा है :

‘ वृष्ट्वा तत्रामलक धरणीमन्दिरी ताहं जपाणि
तस्माच्छात्तटमवतर्न् किञ्चिदाकृत्य पक्षी
कूलेऽम्भीधिः क्रुक् कसिवा केसरीणिम्ले
परयस्फीतां पुशुतभुजाविक्रमीकृन् या ॥ ’

(१।४१)

श्रुतः कवि उदण्ड ने अपनी को० सं० काव्य में
प्रकृति का यथोचित निर्वाह किया है। इस काव्य में प्रकृति का सांगीपाणि
रमणीय धीन्द्रयांकन करके कवि ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इनके
प्राकृतिक वर्णन इतने सजीव हैं कि वर्ण्य वस्तु मानसिक नेत्रों के सम्मुख नृत्य
करती हुई ही प्रतीत होती हैं। बाह्य प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण कर उसका
भारमिक वेश ग्रहण करना कवि की मक्ती विशेषता है।

कवि उदण्ड ने मनुष्य तथा प्रकृति दोनों का
संयुक्त सम्पर्क एवं तत्त्वों एकता स्थापित कर प्रकृति के अन्तर्गत स्फुरित होने
वाले हुबुब की पहचाना है। प्रकृति में इन्होंने अत्यन्त का अनुभव किया
है तथा पक्षी एवं मानव में तादात्म्य स्थापित किया है। इसीलिए उचित
प्रणय हेतु वृत्त का चयन भी प्रकृति से ही किया है। कवि ने कोकिल (वृत्त)
की एक सजीव प्राणी के रूप में चित्रित किया है। जिसमें विनोदप्रिया,
रक्षिता एवं नायक के समान ही प्रणय पिपासा भी दृष्टिगोचर होती है।

प्रकृति स्व मानव का यह ज्ञान सामयिक तथा उनके कार्य कलापी की विम्ब प्रतिविम्ब रूप में स्थिति बदिलीय है। निःसंदेह उदण्ड प्रकृति के जन्तुः स्वतः के सुस्वपारशी कवि थे। उनकी दृष्टि प्रकृति के साम्य रूप पर रीझती हुई दृष्टिगोचर होती है। सम्पूर्ण की० सं० काव्य ही प्रकृति का मनीसर रूप यौक्तात्मक चित्रण है। प्रकृति का जैसा मनीरम चित्रण वह प्रस्तुत सबसे काव्य में उपलब्ध है, वैसा विप्लुत की होइ कर अव्यय दुर्लभ है।

षष्ठः अध्यायः

काव्य का विविध दृष्टियों का विवेचन

- १- ऐतिहासिक एवं राजनीतिक
- २- भौगोलिक
- ३- धार्मिक
- ४- सामाजिक
- ५- सांस्कृतिक
- ६- साहित्यिक
- ७- कलात्मक

ऐतिहासिक एवं राजनीतिक स्थिति

दक्षिण भारत का इतिहास कत्यधिक प्राचीन है। मयकासीन दक्षिणी भारत के समित्नाहृ एवं केरल प्रान्त में कौन २ से नगर थे ? इन नगरों की उत्पत्ति कैसे हुई ? किस किस साम्राज्य के किन किन सम्राटों ने शासन किया ? तथा किस किस नगर की अपनी राजधानी बनाया गया, ऐतिहासिक एवं राजनीतिक तथ्यों पर यह कौ० सं० काव्य पर्याप्त प्रकाश डालता है क्योंकि प्रस्तुत काव्य में कवि उदण्ड ने स्थान स्थान पर पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथाओं का उल्लेख किया है।

प्रस्तुतकाव्य का मारम्भ कांची नगरी से हुआ है। कांची के निर्माण के सम्बन्ध में वनिक कथारं प्रस्तुत हैं। एक पौराणिक कथा के अनुसार ब्रह्मा ने जिस भूमि पर यह किया था, उसी भूमि पर विश्व-कर्मा ने कांची का निर्माण दिया। योगेश्वर स्कान्दनाथ भीक्षता थे। ब्रह्मा के यज्ञ के कारण वेगवती (कम्पा) नदी सूख गई। तब ब्रह्मा ने कहा कि शिवजी के प्रत्यर्षी भगवान् विष्णु- वरदराज पेरुमास के बासी-पादों से वह पुनः प्रवाहित हो उठेंगे, जो विष्णु- विष्णु कांची में विराजमान हैं। कौ० सं० काव्य के पूर्व भाग के २६ वें श्लोक से इस कथा का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

इसका इतिहास बहुत ही पुराना है। कई शताब्दियों तक यह पल्लव राजाओं की राजधानी रही। इंडी, सातवीं

उत्तावदियी में पल्लव राजाओं ने यहाँ जैन विस्तार मंदिर बनवाये। यह कई शताब्दियों तक जोस राजाओं की भी राजधानी बनी। उन्होंने भी जैन मध्य कलात्मक मंदिरों का निर्माण कराया। कहा जाता है कि यहाँ पर कभी १००८ शिव मंदिर और १०८ वैष्णव मंदिर थे। आज इस नगर में लगभग २२५ मंदिर हैं। कांची नगरी प्राचीन काल से कार्य सम्पन्न, कलात्मक साहित्य संस्कृति का महत्वपूर्ण केन्द्र बनी। यह नगरी कम्पा नदी के तट पर स्थित है। वर्तमान काल में इस नदी का कोई ब्रिज नहीं मिलता।

काव्य में वर्णित कावेरी नदी पश्चिमाफ़ा की प्रसिद्ध महानदीमानी नहीं है। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर जोस देश में प्रवेश हेतु साहय्य नदी पुल्लेसिन द्वितीय ने अपनी विजयवाहिनी के साथ इसी नदी को पार किया था। तथा किसी पल्लव नरेश ने कावेरी के तटवर्ती प्रदेशों पर शासन किया था। तत्कालीन पण्डितमहाराज से ज्ञात होता है कि " इस गौरवशालिनी सरिता को महर्षि वगस्त्य ने राजा कर्ति को प्रार्थना पर और सूर्य के पुत्रों की परम फल प्राप्ति के लिए अपनी कृप से नियुक्त किया था। " यह नदी साहय्य पर्वत से निकलती है, ऐसा की० सं० काव्य से भी ज्ञात होता है। साहय्य पर्वत के विषय में एक पौराणिक कथा इस प्रकार है- मार्गर्वी के नेता भृगुकुल पति ने जब राज्या राजा की तलब नहस कर दिया तो इस हत्याकाण्ड के फलस्वरूप ये प्रायश्चित्त हेतु इसी साहय्य पर्वत पर तप हेतु बसे गये थे।

इसी साहय्य पर्वत के पूर्वी, पश्चिमी घाट पर केरल प्रदेश स्थित है। कवि उदण्ड ने अपनी की० सं० काव्य में केरल प्रदेश

१- की० सं० २। १

२- वही २।३५

की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी प्रसिद्ध कथाओं का संकेत किया है।

केरल की भागवत दीव भी कहा जाता है।
बाय जहाँ केरल स्थित है, वहाँ पहले सागर था। भगुपति परशुराम ने
एक जमुझ से उपहार स्वरूप प्राप्त किया। तत्पश्चात् परशुराम ने ६४
ब्राह्मण परिवारों में केरलीय भूभाग बाँट कर, उनकी यहाँ बसाया^१।

एक अन्य कथा इस प्रकार है- परशुराम ने
जब केरलीय भूमि ब्राह्मणों में बाँट दी, तो नागों ने ब्राह्मणों के कार्यों
में विघ्न डालना प्रारम्भ कर दिया। ब्राह्मण डर कर भागने लगे। जब
नागों पर परशुराम का कोई बल नहीं चला तब उन्होंने नागों की भी
जमीन बाँटो और ब्राह्मणों को बाधित दिया- 'इन नागों की स्थलीय
देवता मान कर पूजा करो।' इन कथाओं के आधार पर इतिहासज्ञ
कहते हैं कि 'नाग' नाम को प्रसिद्ध जाति केरल में पहले से थी। परशु-
राम बायों के नेता थे। ब्राह्मणों के साथ बाँट कर उन्होंने नागों से युद्ध
किया। बाय भी यहीं बाँट कर बसे गये। वे ही केरल के ब्राह्मण हैं। क्का-
त्मणा, विशेषकर 'नायर' नागों के पूर्वज हैं।

वक्तः केरल का इतिहास बहुत ही प्राचीन है।
कवि ने संदेश प्रेषण प्रसंग में केरल के अत्यधिक प्राचीन नगर 'जयन्तर्मगलम्'
का उल्लेख किया है। यह कुर्णी नदी तट पर स्थित है। कहा जाता है कि
पुराकाल में 'जयन्त नामक' एक तपस्वी ने यहाँ स्याति प्राप्त की थी।
इसी तपस्वी के नाम पर यह नगर का नाम 'जयन्तर्मगलम्' पड़ गया है।^३

१- की० सं० १।४१

२- वही १।३६

३- वही १। ११, ६२

प्रस्तुत को० सं० काव्य से ज्ञात होता है कि प्राचीन केरल प्रान्त में पुरसी, मूणक, केरल ज्ञयादि वंश के राजाओं ने शासन किया था।

तत्कालीन युग में पुरसी राजाओं ने केरल प्रान्त में शासन किया था। उन्होंने 'कोट्टयम्' नगरी को अपनी राजधानी बनाया। ज्यो वंश में हरिश्चन्द्र नामक एक राजा हुए जो कोमारिस्त स्कूल में मोमासा के कारण वृत्ति प्रसिद्धि को प्राप्त हुए थे। ये अत्यधिक शूरवीर, पराक्रमी विद्वान् एवं दार्शनिक थे। उन्होंने अनेक युद्धों में अपने शत्रुओं को पराजित किया था।

ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर पता चलता है कि केरल प्रान्त के कोल दीव (कोलट्टुनाद) में मूणक राजाओं ने भी राज्य किया था, ऐसा ही लेकर कवि ने अपने 'वीरुञ्ज विजय' नामक संस्कृत काव्य में उल्लेख किया है। केरल का ऐतिहासिकता है कि प्राचीनकाल में यहाँ केरल राजाओं का शासन रहा था। इन राजाओं ने अपने राजधानी के काव्य में वर्णित 'माहीदयपुरम्' जगत्ता वीरनक्षत्रपुरी को बनाया था।

ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर ज्ञात होता है कि केरल राजाओं को शक्ति हानि होने के बाद १५ वीं सदी तक जारी जारी केरल वार्षिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध रहा।

१- को० सं० १९४४, ४५

२- वही १९६१

३- वही १९८८-८९

इन राजाओं ने साहित्य, धर्म, कला की प्रोत्साहन दिया। मलयालम के अतिरिक्त संस्कृत कवियों ने राजाओं के दरबारों को अलंकृत किया। कई राजाओं ने साहित्यिक रत्नारं की बीर समस्त कलाओं को समृद्ध किया।

ऐसा ही की० सं० काव्य से ज्ञात होता है कि पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्यकाळ में अमरिण मानविक्रम राजा, राज्य करता था। अपने पर्वत से समुद्र पर्यन्त शासन किया तथा (कालिकट) 'कुन्कुटकोट' नगर की अपनी राजधानी बनाया। यह राजा कत्यधिक बीर, पराक्रमी, कला, साहित्य प्रीतिपरा विद्वान् था। किंवा कि हम पूर्व प्रकरण (तृतीय अध्याय) में उल्लिखित कर चुके हैं कि इसी राजा के दरबार में कवि उदण्ड तथा अन्य सम्प्रदासीन विद्वानों, कवियों ने उन्नति की थी।

उपर्युक्त कथन के आधार पर हम कह सकते हैं कि सत्कासीन युग में भी सामाजिक व्यवस्था को संजातित करने के लिए राज्य की स्थापना की जाती थी। राजा ही राज्य का मुख्याधिकारी होता था। प्रजा का भरण पोषण, रक्षा करना, कला प्रमुख धर्म माना जाता था। प्रायः राजा कत्यधिक पराक्रमी, दुराधीर, न्यायप्रिय विद्वान्, उदार, साहसी, राजनीति कुशल, कला प्रीति होते थे। संपूर्ण देश में अपना साम्राज्य स्थापित करने के लिए फहरीसी राजा से युद्ध भी हुवा करते थे। राजा जिस भी नगरी की अपनी राजधानी बनाती थे वह

अत्यधिक समृद्ध नगरी होती थी। कतः वे अपनी राज्य के बहुमुखी विकास में दत्तचित्त रहती थे।

कतः कवि उदण्ड का प्रस्तुत की० सं० काव्य, प्राचीन दक्षिण भारत में स्थित, तमिलनाडु एवं केरल प्रान्त की, तत्कालीन ऐतिहासिक एवं राजनीतिक स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश डालता है।

भौगोलिक स्थिति

ऐसे काव्यों के लिए विधान से स्पष्ट है कि इन काव्यों में मार्ग वर्णन भी निर्दिष्ट रहता है। काव्य में दूत के एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने के व्याज से कवि पाठकों को भौगोलिक परिचय देता रहता है। यद्यपि ऐसे काव्यकारों का मुख्य उद्देश्य भौगोलिक विवरण देना नहीं होता, तथापि काव्य में यह स्वरूप ही उपस्थित हो जाता है।

मार्ग निर्दिष्ट प्रसंग के अन्तर्गत कवि उदण्ड ने को० ६० काव्य में कान्ची नगरी से जयन्तमण्डलम् नगर तक के मध्यस्थीय मार्ग का वर्णन किया है।

को० ६० मध्यकालीन रचनाकृति होने के कारण काव्य में वर्णित मार्ग निर्दिष्ट प्रसंग के अन्तर्गत तमिलनाडु तथा केरल प्रदेश के प्राचीन नगरों, स्थलों, नदियों, पर्वत, महासागर इत्यादि के प्रसिद्ध नामों का वायुनिक काल में नाम परिवर्तित हो गया है। इन परिवर्तित नवों नामों का उल्लेख करना भी आवश्यक है ताकि इन प्रान्तों की भौगोलिक स्थिति का समुचित ज्ञान हो सके।

कवि उदण्ड ने अपने काव्य में तमिलनाडु में स्थित, कान्ची, तुण्डीर, हीण्ड, चील इत्यादि नगरों का तथा कम्पा, पोरुचिन्नु, कविरी, नीवा आदि नदियों का एवं केरल के उत्तरी कोट्टयम, कोलम, कुन्कुटकोट, प्रकाश, रणस्त (पोरुकुलम्) कोटुण्णल्लुर

वन्दरमाह, वयन्सर्गलम् आदि नगरों का तथा निला, वाहुमयी, हूणी,
वल्ही- कौप्यी इत्यादि नदियों का कुमलः उत्सृत किया है।

प्रस्तुत काव्य में सन्दर्भित कौक्सि की यात्रा प्राचीन दक्षिणापथ के उत्तरीय भाग कम्पा नदी तट पर (वेणवती) स्थित कौची नगरी से प्रारम्भ होती है। प्राचीनकाल में इसकी कौचीपुर, कौचिनपुर, कौचीवरम्, कनकपुरी भी कहा जाता था, परन्तु कालान्तर में इसका नाम 'कौचीपुरम्' हो गया है। वाकस्त इस नगर के पास पास कम्पा नदी का कोई चिह्न नहीं मिलता, बल्कि 'स्काग्रनाथ मंदिर' के समीप एक पवित्र जलाशय अवश्य पाया जाता है। वर्तमान समय में यह प्राचीन कौची नगरी तमिलनाडु की राजधानी मद्रास के दक्षिण पश्चिम में लगभग ४७ मील दूर पालार नदी के तट पर स्थित है। यह पालार (सीरहिन्धु) नदी, मैसूर में नदी फटाहियों से प्रवाहित होकर उत्तरी कर्नाट तथा त्रिगुप्त क्षेत्र में प्रवाहित होती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती है।

काव्य में वर्णित वयन्सर्गलम् नगर^३, जहाँ पर कौक्सि की यात्रा समाप्त होती है, वर्तमान काल में यह नगर केरल के प्रसिद्ध वन्दरमाह कौचीन में स्थित वासुमायी नदी की दोनों प्रशाखाओं के मध्य में स्थित है, जो कि हूणी तथा पैरियार नदी का एक भाग है,

१- को० सी० १। १, १६, २०

२- वही , १७

३- वही , ११

४- वही , ११, ८८

यहाँ पर वर्तमान समय में चैन्नमनगलमनगर बसा हुआ है।

कौ० ६० काव्य में मार्ग विधिष्ट प्रसंग में कवि ने पश्चिमी महासागर का उल्लेख किया है। यह कैल प्रवेश के पश्चिमी तट से सिष्टा हुआ है, सह्याद्रि तथा अरबसागरी के बीच में कन्याकुमारी से गोकर्ण तक भाग हो अरब सागर में बहा जाता है।

काँची से 'अयन्तर्गतम्' जाती समय मार्ग में फूले वाले साह्य पर्वत को भी कवि ने अपने काव्य में उल्लिखित किया है। प्राचीन काल में पश्चिमी घाट को ही 'सह्याद्रि' कहते थे। यह दक्षिण की पश्चिम सीमा है, तथा पश्चिमी घाट पर स्थित एक पर्वत है। महाराष्ट्र के तानवेश जिले में स्थित कुण्डवारी दर्रे से भारत के दक्षिणतम बिन्दु कन्याकुमारी तक निरन्तर १००० मीटर तक फैले हुए हैं।

कौ० ६० काव्य में नायक ने कोदित को, काँची नगरी से लाटपुर अछार जाने का परामर्श दिया है। जो कि यह तमिलनाडु के तुण्डोर दीर में विद्यमान, पालार नदी तट पर स्थित है। अछार को पार करने के बाद बिल्व दी. में प्रवेश करने के लिए कहा है। बिल्वदी. नीवा नदी तट पर स्थित है, जो पालार (चोरसिन्धु) नदी को सहायक नदी मानी जाती है।

यह बिल्व दी. नील प्रवेश में है। यह नील प्रवेश पूर्वी समुद्र तट पर स्थित पोन्नार नदी से बेल्लोर तक, पश्चिम में

१- कौ० ६० १।१६

२- वही १।३५

३- वही १।२५

४- वही १।२७

संगम कुर्ग को सीमावर्ती तक फैला हुआ था। इसे वाज्जल तोरपैठलम् कहा जाता है। इसी तंजीर एवं त्रिचिनापल्ली जिसे समाविष्ट है। यह कावेरी नदी से अभिविहित होता है। वाज्जल तमिळनाडु की प्रसिद्ध कावेरी नदी कुर्ग के दायें से निकल कर, मेरुर सेलम से, दक्षिण पूर्व की ओर कौयम्बटूर, त्रिचिनापल्ली जिलों से प्रवाहित होती हुई मद्रास के दक्षिण में स्थित तंजीर में बहती हुई, बंगाल की खाड़ी में जा गिरती है। यह महा-नदी साह्य पर्यंत के सामने से प्रवाहित होती है। ऐसा की० ६० काव्य से ज्ञात होता है। इसी साह्य पर्यंत के तट पर हीसल ग्राम है। यह क्षेत्र सम्भवतया आधुनिक त्रिचिनापल्ली तथा कौयम्बटूर जिसे के वन्तगंत है।

काव्य में वर्णित वाह्मयोनदी^३ की वाज-
विष्णुत्त भी कहा जाता है। वर्तमान काल में यह उत्तरी मालाबार में कोट्टियूर के निकट स्थित है। काव्य में इसी नदी के समीप स्थित तत्का-
सीन पुरतो राजाओं की राजधानी कोट्टयम नगरो का उल्लेख मिलता है। वाज यह कोचीन से ४३ मील दक्षिण पूर्व में विद्यमान है। काव्य में वर्णित प्राचीन कोस^४ क्षेत्र की वाज्जल कोसट्टुनाद कहा जाता है। यह नगर केरल प्रान्त के उत्तर में स्थित है। कोस क्षेत्र को पार करने के बाद कोक्स की कुक्कुटओड^५ जाने का परामर्श दिया है। प्राचीन कुक्कुटओडनगर की आधुनिक

१- की० ६० १। ३५

२- .. १। ३६

३- .. १। ४२

४- .. १०

५- .. ६१

६- .. ६४

काल में कातिकट कहा जाता है। यह केरल प्रदेश में स्थित है। यहाँ का बन्दरगाह बहुत प्राचीन है। इसी नगर में स्थित खेतारण्य के समीप विशा नदी प्रवाहित होती है जिसकी वाकस्त (तुप्पुनोड) भारतप्पु नाम से जाना जाता है। केरल की प्राचीन राजधानी वैजयपुरी जय्या माहोदयपुरम् की वर्तमान समय में तिरुवन्चिकुलम् कहा जाता है। वर्तमान कोट्टंगल्लूर इसका एक भाग था। इसी नगरी के दक्षिणी तट पर जयन्त-मंगलम् (चैन्नमंगलम्) नगर है। उल्लेख बाइक कोकिल की यात्रा इसी नगर में समाप्त हो जाती है।

इस प्रकार प्रस्तुत काव्य में प्राचीन दक्षिण भारत के विस्तृत भू भाग का वर्णन पाया जाता है जिसके आधार वायु-निक नौगोलिक वेत्तावर्गितत्वादीन नौगोलिक स्थिति का समुचित ज्ञान-वर्धन कराने में पर्याप्त सहायता मिल सकती है।

नौगोलिक परिज्ञान के साथ साथ केरल के प्राकृतिक उत्पादनों का भी परिचय प्राप्त होता है। सर्वप्रथम मानसून रहने के कारण, नारियल, आम्र, धान, स्तायबो, पान, सुपारी, केसा (कुश्ती) इत्यादि यहाँ की मुख्य पैदावार है।

अत्युष्णपर्वत पालाई तथा मनीरम पाटिणी से वायुत्त रहने के कारण, हरे भरे उपमनों में, वन्य फल-पत्ती यथा- हरिण

१- को० सं० ७०

२- .. ७२

३- .. ८८, ८९

४- .. ९२

व्याघ्र, हत्यादि स्वच्छन्द विमर्श करते रहते हैं।

इनके अविरहित स्तंभ काव्य के द्वारा एक नगर से दूसरे नगर तक के वातागमन के साधनों तथा प्राचीन मार्गों का भी अनुमान हो सगाया जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवि उदयन द्वारा प्रस्तुत यह १०० श्लोक काव्य तत्कालीन प्राचीन तमिलनाडु तथा केरल प्रान्त की भौगोलिक परिस्थितियों का अच्छा प्रकार हालता है।

धार्मिक स्थिति

समस्त दक्षिण भारत की

विशेषतः तमिलनाडु एवं केरल प्रान्त की मंदिरों का घर माना जाता है। यहाँ के समुद्र तट पर, नदियों के घाटों पर, पर्वत शिखरों पर विविध धर्मावलम्बियों के मंदिरों एवं तीर्थ स्थलों के स्पष्ट होता है कि यह अत्यधिक धार्मिक क्षेत्र है। प्रस्तुत काव्य में इसका स्थान स्थान पर कवि उद्घष्ट ने उल्लेख किया है।

को० सं० काव्य के प्रथम श्लोक में कवि ने

पार्वती के निवास स्थल कांची नगरी का वर्णन किया है। किंवदन्ता है कि देवी पार्वती ने अपने पति शिव द्वारा दिये गये आभूषण की सुविधा हेतु इस नगरी में स्थित स्काम्प्रनाथ (स्काम्प्रनाथ) मंदिर में ६ माह तक तप किया था। क्योंकि इस धार्मिक स्थल में समस्त विघ्न बाधाओं को नष्ट करने की शक्ति है। ऐसा ही कवि ने अपने काव्य में उल्लेख किया है। प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में कांची की सप्ततीर्थी- ज्योत्स्ना, मथुरा, माया, काशी, कांची, कान्तिका, पुरी - में से एक महत्वपूर्ण तीर्थ स्थल माना गया है। काज कांची में लगभग १०८ शिव मंदिर तथा १८ विष्णु मंदिर हैं। इनमें अत्यधिक प्रसृत तीन मंदिर हैं- कामाक्षी मंदिर (पार्वती), स्काम्प्रनाथ मंदिर (शिव) तथा बृहद्देव मंदिर (विष्णु)। इस क्षेत्र में सर्वत्र अन्य देवी देवताओं के अनेक मंदिर दिखाई देते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि यहाँ के निवासो विभिन्न देवी देवताओं के उपासक हैं।

वादि की समान भद्रा के साथ स्तुति की है। किन्तु कौ० सं० काव्य के समुचित अध्ययन से प्रतीत होता है कि यहाँ के निवासी शक्त, शैव तथा वैष्णव परम्परा में अत्यधिक विश्वास करते थे। क्योंकि काव्य में स्थान स्थान पर कवि ने पार्वती, शिव, विष्णु इत्यादि के कारण पवित्र मंदिरों तथा तीर्थ स्थलों का ही सर्वाधिक उल्लेख किया है। स्पष्ट रूप से है कि सम्भवतया यहाँ शिव, विष्णु इत्यादि के मंदिरों का बाहुल्य है। प्रस्तुत काव्य से ज्ञात होता है कि पहले यहाँ इन्द्र, वरुणा, ब्रह्मा इत्यादि देवताओं की पूजा होती थी^१। कालान्तर में स्थल स्थल पर अनेक देवी देवताओं के मंदिर निर्मित हो गये। अतः यहाँ धार्मिक दृष्टि से भी बहुत विविधता पायी जाती रही है। यहाँ पर बौद्ध, ब्राह्मण, शैव, वैष्णव शक्त, कामाक्षिक आदि विभिन्न धर्म व संप्रदायों की संरक्षण प्राप्त था। ऐसा प्रतीत होता है।

यहाँ के निवासी विभिन्न वृत्तों की पूजा करते थे- यथा - शैवा, नारियल। शब्द प्रक्रिया के आधार पर केरा शब्द है ही केरल बना है जिसका अर्थ नारियल होता है। नारियल की बहुतायत होने के कारण यह वृत्त की, यहाँ के निवासी समस्त कामनाओं का प्रदाता कल्पवृत्त के समान ही देवता मानकर पूजा करते थे।

अपनी अपनी वाराध्य देवी देवताओं की प्रार्थना करने के लिए पत्तुर्वी की बलि भी देते थे^५।

१- कौ० सं० १।२, १४

२- वही १।२८, २७, २८, ४२, ५०, ७०

३- वही १।२६, ३६, ४९, ६२, ७२

४- वही १।५३

५- वही १।८७

कवि उदयचन्द ने अपने काव्य में मार्ग प्रेमण

प्रमन , विविध^२ मंदिरों में प्रतिष्ठित^३ कीक पुत्रो- देवताओं का- पार्वती,^१
कामाख्या, भद्रकाली, चण्डिका, दुर्गा, लक्ष्मी, कात्यायनी, वणिम^४ इत्यादि
देवियों के वर्तित^५ विष्णु , श्री शिव, श्री^{१०} हरण, श्री^{११} रत्नकर, श्री^{१२} कृष्ण ,
श्री^{१४} गणेश , कामपोठ , शास्ता, कर्षक , भृगुसप्तपति , कामदेव^{१६}

१- को० सं० २। १, ३

२- वही २। १४

३- वही २। ८७

४- वही २। ४५

५- वही २। ८५

६- वही २। ६२ , ७२ , २। २

७- वही २। ७

८- वही २। ८५

९- वही २। ३६ , ४१ , ४४ , ५५ , ७२ , ८६

१०- वही २। १८ , २७ , ४२ , ५० , ५१ , ५२ , ७०

११- वही २। १४

१२- वही २। २८ , ५७ , ८२ , ८८

१३- वही २। ६१ , ४६

१४- वही २। ३५

१५- वही २। १७

१६- वही २। ७५

१७- वही २। ७०-७१

१८- वही , २। ३६

१९- वही , २। ८३

प्रस्तुत काव्य देजात होता है कि नदी तटीय लोगों का देवता रुद्र था । समुद्र तटवर्ती लोगों का देवता वरुण था । मरुभूमि निवासियों की देवी कासी थी । दक्षिण भारत के निवासी विभिन्न त्यौहारों की भी अत्यधिक उत्साहपूर्वक मनाते थे । यज्ञादि संघन होते रहते थे ।

अत्यधिक धार्मिक प्रवृत्ति के होने के कारण , शकुन- वफाकुन, भविष्यवाणी, वाकालवाणी इत्यादि पर अत्यधिक विश्वास करते थे । कवि ने अपने काव्य में स्थान स्थान पर ऐसा उल्लेख किया है।

अतः प्रस्तुत की० सं० काव्य में स्थान स्थान पर विभिन्न देवी देवताओं के मंदिरों एवं पवित्र तीर्थ स्थलों के वर्णन से निवासियों की वास्तविक भावना का परिणय मिलता है^१ यहाँ के निवासी काव्य में वर्णित सभी देवी देवताओं की समान उदा एवं पवित्र भावना से स्तुति करते थे । इसके उनको धार्मिक भावना एवं विविधता का भी संकेत मिलता है।

१- की० सं० ११४, ७३

२- . . ११५

३- . . ११२, ३ . ११४२

सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति

प्रस्तुत संदेश काव्य में कवि उदण्ड ने यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से कहीं भी सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं का उल्लेख नहीं किया है, तथापि काव्य में उपलब्ध यह तंत्र वस्पष्ट संकेतों से तत्कालीन सामाजिक परम्पराओं का सामान्य ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

इस काव्य में तत्कालीन युग का प्रतिबिम्ब स्पष्ट रूप में दिखायी देता है। उस समय भी दक्षिण भारत में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का विस्तार हो चुका था।

यहाँ की संस्कृति तत्ति प्राचीन तथा भव्य थी। शिक्षा, धर्म, सम्प्रदाय, विज्ञान, कला साहित्य इत्यादि का पर्याप्त विकास हो चुका था। अतः यहाँ प्राचीन एवं नवीन सभ्यताओं का सुन्दर संगम हुआ।

कवि उदण्ड ने दक्षिण भारत में स्थित तमिल नाडु एवं केरल प्रान्त की सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं का अवलोकन करतीहुए हा। की० सं० नामक एक द्रुत काव्य का रचना किया, जिसमें उन्होंने उस युग की सामाजिक एवं सांस्कृतिक अविव्यक्तियों का चित्रण पूर्णतया निबद्ध किया है।

तत्कालीन समाज में ब्राह्मणों की सर्वोच्च एवं सर्वोपरि सम्मति जाता था। यहाँ तक कि इनकी 'पृथिवी का देवता' इस उपाधि से विभूषित किया जाता था।

ब्राह्मणों का कार्य का समाज की शिक्षा देना था। ये प्राकृतिक स्थानीय स्थलों में निर्मित बाधनों में निवास करते थे। यज्ञादि पविः कार्य कृष्टों के द्वारा सम्पादित किये जाते थे। नित्य यज्ञादि वैदिक क्रिया कक्षाप करना इनको विनयनी थी। ये सम्पूर्ण विषा के पारसी, वेदों के ज्ञाता एवं सास्त्रज्ञ समझे जाते थे। प्रस्तुत काव्य में कवि ने भी स्थानीय ब्राह्मणों की अत्यधिक प्रशंसा की है।

को० सं० काव्य से ज्ञात होता है कि उदण्ड के समय में दक्षिण भारत का समाज वर्ण व्यवस्था पर पूर्णतया बाध-रित था। वर्ण व्यवस्था पर भी बाधरित समाज होता था उसी के बाधर पर सामाजिक एवं यज्ञादि धार्मिक कृत्य सम्पन्न होती रहते थे। यहाँ के हिन्दुओं में वह जातुबन्धन नहीं दिखाई देता जो उत्तर भारत में मिलता था। यहाँ पर ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों की अनेक जातियाँ विद्यमान थी, राजपूत, पर बहुत कम क्योंकि राजा राजपूत वंश के ही होते थे। वैश्य तथा शूद्र नामक जाति का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। काव्य से विदित होता है कि दक्षिण भारत में एक 'द्रविड' कक्षा 'द्रविड' नामक एक जाति भी निवास करती थी। इन उच्च जातियों के अतिरिक्त पहाड़ी वन भूमि में कुछ जंगली जातियाँ भी निवास करती थीं। यथा- मोर, तबरे वादि।

१- को० सं० १।५१

२- वही १।२२, २६

३- वही १।७६

४- वही १।२४

५- वही १।३१

तत्कालीन समाज में महर्षियों^१, तपस्वियों^२,
विद्वानों^३, ब्राह्मणों^४ एवं कवियों^५ इत्यादि की अत्यधिक सम्मान दिया
जाता था ।

संस्कृत तथा वैदिक धर्म का प्रचार यथांश
मात्रा में ही रुका था । वाजपेयी में निर्मित वायु विवाद कला में प्रति-
दिन श्रेष्ठ विद्वानों के समुह एकत्र होकर धर्म, दर्शन इत्यादि गहन
विषयों पर ज्ञानों एवं वातांशों को करते रहते थे । इसी कारण मध्य
कालीन युग की दार्शनिक युग भी कहा जाता था । इसी युग में मीमांसा
दर्शन के प्रसिद्ध कृतज्ञ पण्डित के महर्षि संकराचार्य और पुस्तोकीय
हरिश्चन्द्र नामक राजा भी उत्पन्न हुए थे । ये सभी विद्वान् विषयों
पर वाद विवाद करते रहते थे ।

तत्कालीन जनजीवन अत्यधिक सम्पन्न एवं
समृद्ध था । नगरनिवासियों को सुख समृद्धि एवं विलासप्रियता का परिचय
इस काव्य से प्राप्त हो पूर्वक समझा जा सकता है । नगर में मध्य प्रासाद^{१०}

१- को० सं० १।७६

२- वही १।१९, ६२

३- वही १।८१

४- वही १। २५, ५१, ७६, ८४

५- वही १।६१

६- वही १।८०

७- वही १।७६

८- वही १।८८

९- वही १।७७ ४५

१०- वही १।६७

एवं उच्च कूट्टासिकाओं वासे भवन ही सर्वत्र दृष्टिगोचर होते थे^{७१}। भवन की भित्तियाँ फर्श एवं शीषान मार्ग स्फटिक मणियाँ से निर्मित होती थी^{७२}। प्रायः प्रत्येक भवन से सगी हुई एक के सिवाटिका हुवा करते थे, जिसमें क्यास्नान तथा कुंभी की व्यवस्था रहती थी। भवन वाटिका में पातक, छंद, शारद, मयूर आदि विचरण करते रहते थे^{७३}। भवन में विविध कार्यों के लिए पुष्क पुष्क तदनुष्म कर्तों का निर्माण किया जाता था। क्या- सयनागार, चित्राला इत्यादि।

प्रस्तुत काव्य के द्वारा सत्कालीन नागरिक दैनिक कर्माओं - रहन सहन इत्यादि का विस्तृत विवरण मिलता है। जहाँ समाज में कूटनोति के दाँव पक्ष सुलभगये जाते थे, वहाँ मनोरंजन के साधन भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे। चित्राला मनोरंजन का एक प्रमुख उपकरण था। भवन भित्तियों पर नाना प्रकार के चित्र बने रहते थे। स्त्री पुरुषों का दैनिक जीवन वामोद प्रमोद से बीत प्रसिद्ध था। गोच्छी करना, शायंकाष्ट में उत्सव संगोष्ठ, नृत्य आदि का आयोजन करना इत्यादि दैनिककर्मों में सम्मिलित थे। दैनिक कर्मों के अतिरिक्त विशिष्ट पर्वों और उत्सवों की विस्तृत श्रृंखलाओं का भी विस्तृत वर्णन किया गया

१- को० सं० २। १, २। ५, २। १८

२- वही २। ७, ११, १०, ४०

३- वही २। ३, १६

४- वही २। ६५

५- वही २। ३८

६- ,, २। ७८, ८०

७- ,, २। ५१, ५५

है। वहाँ के निवासी वहाँ एक और धार्मिक भक्ति भावना से प्रभावित
 जान पड़ते थे, वहाँ दूसरी और अत्यधिक कामुक प्रकृति के भी होते थे।
 और विलासमय जीवन व्यतीत करते थे। रात्रि में बमिसारिकाओं की
 प्रतीक्षा, दूती प्रेषण, काम झोड़ा बादि का उत्थेन भी मिलता है।
 मेदिनी की यात्रा धार्मिक समारोहों में प्रेमो युक्त के मिलन बादि का
 वर्णन भी मिलता है।

बमिसारिकाओं की समाज का अभिन्न अंग
 माना जाता था। उनका समाज में महत्वपूर्ण स्थान था। समुद्र नग-
 रियों में बमिसारिकाएँ दिन में भी अपनी प्रेमियों के पास निकल कर
 जाती थी। नाना प्रकार के प्रसाधनों, वस्त्रों तथा आभूषणों से अपनी
 तन को अलंकृत करती थीं जिन्हें फलस्वरूप कामदेव की भी अपनी बाल में
 फँसा लेती थी। संक्षेप में समाज का सम्पन्न वर्ग विलासिता को और
 मुक्त हुआ था।

इस काव्य से विदित होता है कि उस समय
 समाज में नारियों को अत्यधिक वादर प्राप्त था। उनकी एक सीमा तक
 पर्याप्त पूर्णतः स्वतन्त्रता प्राप्त थी। वे सार्वजनिक, सामाजिक एवं
 सांस्कृतिक कार्यों में स्वेच्छापूर्वक भाग लेती थी। इसके अतिरिक्त हुनक

१- को० सं० २।७३

२- वही २। ३३, ६५

३- वही २।३०, २।३

४- वही २।३७

५- वही २।७३

सुनतियों की प्रेम विवाह की पूर्णतया स्वतन्त्रता प्राप्त थी ।

देशीय स्त्रियाँ अत्यधिक धार्मिक प्रवृत्ति की होती थी । विभिन्न देवी, देवताओं को पूजा, उपासना करती थी । वह प्रतिदिन मंदिरों में बसि सर्व पूजा के निमित्त द्रव्यों को चढ़ा कर अपने वाराज्य देवी देवताओं को प्रसन्न करती थी । ये तथ्य इस बात के प्रमाण हैं कि उस समय स्त्रियों में फर्दा प्रथा नहीं थी ।

गायन वादन वातेत्य तथा प्रसाधन विधि वादि में भी निपुण होती थी । नाना प्रकार के भुगन्धित तेलों को लगाकर अपने केशों को सुसज्जित करती थी । शरीर के विभिन्न अवयवों को माँति नाँति से सजाना जानती थी । गोष्ठों एवं बरणों को रंग के वसिस्त्रित कपोलों तथा उरीजों पर भी भुगन्धित चन्दन इत्यादि फलार्णों का सेप भी करती थी । वे फूल वीर चन्दन का विशेष रूप से प्रयोग करती थी । उक्त कथाओं के वसिस्त्रित स्त्रियाँ बल विहार वादि में भी निपुण होती थी ।

वायुनिक युग की माँति उस समय भी स्त्रियाँ वायुचण प्रिय थी । वह लोक वायुचणों द्वारा अपने को वसिस्त्रित करती थी। यथा- नासिकाभुचण , कंका , बिहवा , गुप्ता , कशाभुचण

१- की० सं० १। ५६

२- वही १। ४७, ३७, २३, २। ३६

३- वही १। २४ , २। ६२

४- वही १। ३६, २। ३०

५- वही १। ३७

६- वही १। ४१

७- वही १। २३

८- वही १। २३

९- वही २। २६

कटिपूत्र^१, डार^२ जत्यादि ।

तत्कालीन युग में पर्वी एवं उत्सवों को मनाने का भी रिवाज था^३ । कृष्ण संकेत को० सं० काव्य में कई स्थलों पर मिलता है। यथा- कानि के कामाक्षी मंदिर में फाल्गुन मास में "अमर उत्सव" नामक एक पर्व शानन्धपूर्वक सम्पन्न किया जाता है। किंवदन्ती है कि देवी पार्वती को उनके पति ने प्राप दिया था, तो इससे मुक्ति पाने के लिए उन्होंने यहाँ तपस्या की थी । इस पर्व के दसवें तथा अन्तिम दिन रात्रि में शिव तथा पार्वती की मूर्तियाँ पास पास रखी जाती हैं। एक अन्य महामाघ पर्व को मायकम् महोत्सव नाम से प्रसिद्ध है। यह १२ वर्ग के बाद जाता है। इस पर्व में पृथिवी के समस्त भागों के मनुष्य एकत्रित होती हैं।

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि उस समय भी त्यौहार आदि की भाँति अत्यधिक उत्साहपूर्वक सम्पन्न किये जाते थे । तत्कालीन युग में व्यापार और उद्योग का भी प्रसृत स्थान था । उस समय अनेक प्रकार की सुन्दर नौकाएँ निर्मित होती थीं^४ । ये नौकाएँ व्यापार और वाणिज्य के लक्षितरिक्त युद्ध के काम में भी लाई जाती थी ।

इस प्रकार प्रस्तुत को० सं० काव्य में दक्षिण-वाहिनियों की विशेषतः केरल निवाहिनियों को सामाजिक एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ पूर्णतया स्पष्ट रूप से वर्णित हुई हैं।

१- को० सं० २।३०, २।७४

२- वही २।३४

३- वही २। १४, ५६, ७३

साहित्यिक स्थिति

संस्कृत साहित्य को पुष्ट करने में संप्रति
दक्षिण भारत ने विशेषतः केरल प्रान्त ने महत्वपूर्ण योगदान दिया
है। इसका संकेत प्रस्तुत को० सं० काव्य में कतिपय स्थलों पर उपलब्ध होता
है।

अत्यधिक प्राचीन काल से ही काचीनगरी
संस्कृत के अध्ययन, व्यापन हेतु श्रेष्ठ ब्राह्मणों एवं वैदिक विद्वानों का
निवास स्थल सम्झी जाती थी। यह न केवल कार्य सम्यक्ता एवं संस्कृति
का प्रमुख केन्द्र थी, अपितु साहित्य एवं कला का भी महत्वपूर्ण केन्द्र
केन्द्र सम्झी जाती थी। शंकर नेत्र नारायण आदि अन्य श्रेष्ठ कवियों
एवं वाचार्यों की साहित्यिक साधना इसी दक्षिण भारत में सम्पन्न
हुई थी। केरल के श्री शंकराचार्य ने उपनिषद्, गीता, ब्रह्मसूत्र के भाष्य
एवं कई मौलिक रचनाएँ भी रचीं। उनके स्तोत्र तथा कीर्तन आज भी
केरल के मंदिरों में पुनर्वाँ बेते हैं। उन शंकर कवि को प्रसिद्ध कवि उदण्ड
ने अपने काव्य में की है। रत्नावलियों से यह स्थान बिना का केन्द्र
रहा है।

इनके अतिरिक्त संस्कृत के कवियों में प्रसुत
कवि नारायणभट्टतिरि थे। ये कृष्ण के अवन्थ भक्त, कवि एवं संगीतज्ञ
भी थे। दर्शन, व्याकरण, ज्योतिष आदि के अतिरिक्त उन्होंने

१- को० सं० १।२५ , २६

२- वही १।६९

नारायणीयम्^१ नामक गीति काव्य की भी सिता है। कवि ने प्रस्तुत की० सं० काव्य में अत्यधिक सम्मानपूर्ण शब्दों में इनकी प्रशंसा करते हुए उनके निवास स्थल का उल्लेख किया है। उनके अतिरिक्त केरल प्रान्त की क दार्शनिकों, कवियों, विद्वानों एवं तपस्वियों की सोचा भूमि रहा है। यहीं पर मीमांसा वर्त्म के श्रेष्ठ विद्वान् राधा हरिश्चन्द्र ने कोमा-रित स्मृत में व्याप्ति प्राप्त की थी।^२ इन सभी दार्शनिकों के अतिरिक्त कवि उदयन ने योनी मीमांसा वर्त्म प्रसिद्ध कुसुम मणि पय्यरभट्ट के वाक्य का उल्लेख किया है। इस वाक्य के बाद विवाद कहा में नित्य ही श्रेष्ठ विद्वानों के समूह वाद विवाद हेतु एकत्रित होते थे वहाँ वैदिक साहित्य, क व्याकरण, तर्कशास्त्र, ज्योतिष, अरिष्ट विषयों पर साहित्यिक एवं धार्मिक चर्चा होती रहती थी।^४ इस काल में उत्तम व्याकरण ग्रंथों एवं टीकाओं की रचना हुई। अतः इस युग को व्याकरण या टीका-काल कहा जाने लगा। न केवल वाक्यों में अपितु वाक्यरचने में भी कवि रचनाएं रची गई हैं। इस प्रकार इस युग में साहित्य वर्त्म के कार्य की अत्यधिक प्रोत्साहन मिला।

१- की० सं० १।७७

२- वही १।४५

३- वही १।७६

४- वही १।८०

कलात्मक स्थिति

प्रस्तुत को० सं० काव्य में उनके मंदिरों के वर्णित होने से यह स्पष्ट होता है कि अत्यन्त प्राचीन काल से ही दक्षिण भारत के तमिलनाडु एवं केरल प्रान्त में चिक्का का प्राशुपात्र हो चुका था। समस्त दक्षिण भारत ही पुराकाल से मातृतीय संहिता कलाओं की वराय निधि माना जाता है। नाना प्रकार की दृश्य एवं भव्य कलाएं धर्म को केन्द्र मानकर यहाँ विकसित एवं पस्तवित हुई हैं। अधिकृत कलाओं का विकास मंदिरों के प्रांगणों में हुआ है। यहाँ निर्मित मूर्तियाँ, भवनों एवं मंदिरों की दीवारों, स्तम्भों पर अंकित वृक्ष, सिंह, गज, राजा, विभिन्न देवी, देवताओं की सुन्दर मूर्तियाँ अंकित हैं। इनके अतिरिक्त मानव की विविध दशाओं— नृत्य, गान, दर्शन, विष्णु आदि के अत्यन्त भावपूर्ण चित्र अंकित होने से यह कला अपनी सुदीर्घ परम्परा का उद्घाटन करती है।

इस प्रकार चिक्का, मूर्तिकला आगे बढ़ी। मंदिरों के निर्माण में वास्तु कला की प्रगति मिली। शिल्पकला का भी पर्याप्त विकास हुआ क्योंकि मूर्तियाँ एवं मंदिरों की भित्तियाँ पर की गई नक्काशी व फण्डीकारी अत्यन्त मनमोहक एवं कलात्मक हैं। को० सं० काव्य से ज्ञात होता है कि इन उपर्युक्त कलाओं के अतिरिक्त संगीत, नृत्य, अभिनय आदि कलाओं की भी प्रीतिपात्र मिली। देवताओं की स्तुति में ही संगीत कला फैली।

संगीत के उपकरणों में बीजा, पटम्, मृदंग
 इत्यादि नाम यन्त्र का प्रिय थे । मंगलिक अवसरों तथा उत्सवों के समय
 इसका वादन किया जाता था ।^१

कतः ये प्रान्त प्राचीन काल से ही समस्त
 अस्त्रों की सोसायसी रहा है।

१- को० सं० १।५३, ४७

उपरीष्टार

१- कीकिल सविल काव्य पर मेणुत का प्रभाष

२- कवि उदण्ड एवं उनकी काव्य कृति का स्थान

उपसंहार

नवीनता के मौलिक तथ्यों का अध्ययन ग्रीक समाप्ति के अन्तर निष्कर्ष रूप में उपसंहारि द्वारा प्रस्तुत करने का विधान है जिसमें समस्त ग्रन्थ का मूल्यांकन अन्तर्निहित होता है। तदर्थ एक पुनः अध्याय के रूप में उपसंहार का विधान किया गया है। इस दृष्टि से प्रस्तुत काव्य की उत्कृष्टता का समाहार करते हुए यह निर्णय लिया गया है कि उत्कृष्ट काव्यकार की कृति का अध्ययनपरान्त उसका साहित्यिक दृष्टि से मूल्यांकन करते हुए सार रूप में तत्त्व निर्णय प्रस्तुत किया जाय। इसी दृष्टि से कुछ मूल्यांकित तथ्यों को प्रस्तुत करना यहाँ आवश्यक प्रतीत होगा।

केरल प्रान्त में पन्द्रहवीं शताब्दी के मयकाश में कातिदास के मेघदूत का सफल अनुकरण करते हुए तमिल कवि उदयन ने को० सं० नामक दो भागों में विभक्त १६२ श्लोकों में निम्न एक संक्षिप्त काव्य का रचन किया। विशेष दृष्टिपात करने पर स्पष्ट होता है कि काव्य विभाजन, विषयवस्तु, मार्ग वर्णन, संक्षिप्त कथन भाव, भाषा-शैली, रूप-रन्ध्र, इत्यादि सभी दृष्टियों से कातिदास की कृति का इस पर विशेष प्रभाव पड़ा है।

मेघदूत की ही तरह इस काव्य के पूर्व भाग में मार्ग वर्णन तथा उत्तर भाग में नायिका की विरहावस्था का वर्णन है। नायक द्वारा संक्षिप्त कथन समाप्ति पर दाम्पत्य जीवन की विशेष अभिज्ञान घटनाओं की वर्णित करने के बाद कोकिल की आलीवादि देकर

मार्कि मील वाक्य के साथ काव्य की समाप्ति की है।

नायक द्वारा कीर्ति का स्वागत, मार्ग वर्णन के व्यापक प्रकृति का रमणीय चित्रण प्रस्तुत करना और कलकापुरी के वैभवपूर्ण वर्णन के समान ही बयन्तमिलपुरी के रेशमय कक्षा वैभवपूर्ण वर्णन एवं प्रिया के गृह के समीप स्थित तीस्ताबापी, बाप्रमुखा तथा सुवर्णमय बालबास से युक्त बम्पक वृक्षा और नृत्य करते हुए मयूरी से युक्त बन्दन वाटिका इत्यादि के वर्णन से भेषकृत की ही ज्ञाया प्रतीत होती है। यह समानता भावी तक हो नहीं, बरन शब्दों में भी दृष्टिगत होती है। तुलनात्मक विचाराभिव्यक्ति के लिए कतिपय स्थल दर्शनीय हैं :

सन्देह मे नय लगती । साधय प्रातृकृत्य
सतापासां सुवचन । समाश्वासय प्रेम्धी मे ।

- की० सं० १-१०

संतप्तानां स्वमहि शरणं तत्पयोद । प्रियायाः
सन्देह मे हर धनपति क्रोध विश्लेषितस्य ॥

- भेषकृत १-६

इसी प्रकार एक अन्य उद्धरण भी दर्शनीय

है :

कतिवन्तः सुदुष्मती त्रियोगार्थितानां ।
प्रायः स्वीर्णा भवति किमपि प्राणसम्धारणाय ।

- की० सं० १-१०

स्वी प्रकार मेण्डूत में भी -

“ वाताबन्धः कुसुम सदृशं प्रायशोऽर्कानाम् ।
उपः याति प्रणयि हृदयं विप्रयोगरुणादि । ”
- मेघदूत १-६

कौ० सं० काव्य में मार्ग में पड़ने वाली
वायुप्रलम्बियों के आस्वादन की संभावना करते हुए कोकिल के कहा
गया है :

“ मौधतासि त्वं कमपि समयं तत्तमाकन्दवत्सीः
कान्तारानि सति विकसितैः कः पुनस्तिष्ठतुमीष्टे । ”
- कौ० सं० १-३३

उपसृक्त श्लोक की द्वितीय पंक्ति की पद्य
की तत्काल मेण्डूत की एक निम्नलिखित पंक्ति का स्मरण ही उठता
है :

“ ज्ञातास्वादी विवृतजम्बा की विहारुं समयः ।
- मेघदूत १-४३

कौ० सं० में एक स्थल पर वीजस्तपूरी में स्थित
वृणों की वायु के सम्बन्ध में निम्नलिखित भाव व्यक्त किये गये हैं :

यदाश्लिष्टी वरयुवतिमिदुम्वति त्विन्मगण्डं
वृणीवातः प्रिय एव रतिशान्तमास्यारविन्म ॥

कौ० सं० १-८८

इसी प्रकार के समानान्तर भाव मेघदूत में
उज्जयिनी नगरी के वर्णन प्रसंग-सिन्धुनदी की वायु के सम्बन्ध में व्यक्त
किये गये हैं :

“ यत्र रतीर्णा हरति सुखं तानिर्गमनकुलः
सिन्धुवातः प्रियतम इव प्रार्थना वादुकारः । ”
- मेघदूत १-३१

एक अन्य स्थल पर कौ० सं० में नायक अपनी
नायिका के , अपना दूसरा जीवन बताते हुए निम्न प्रकार से कहता है :

“ इगारीकुलेः सन्ध्याकला जीवितं मे द्वितीयम् । ”
- कौ० सं० २-१६

मेघदूत में भी संक्षिप्त प्रेक्षण प्रसंग में नायक ने
अपनी नायिका को दूसरा जीवन बताते हुए कहा है :

“ तां जानीयाः परिमितं कथां जीवितं मे द्वितीयम् । ”
- मेघदूत - २-२३

उपर्युक्त श्लोकों में भाव साम्य के साथ साथ
शब्द साम्य भी पर्याप्त रूप में दिखलाई देता है।

इस प्रकार परस्पर भाव तथा शब्द साम्य
वाले कौन उदाहरण उपलब्ध हैं। इन उदाहरणों को देख कर ऐसा प्रतीत
होता है, मानो कवि उदयक ने अपनी काव्य का सुख मेघदूत की समस्त

रकर किया ही ।

मेषकृत काव्यगुण होते हुए भी काव्य की
उपादेयता कुछ कम नहीं है।

यह काव्य पूर्णतः कल्पना पर आधारित है।
इसका कथानक वैयक्तिक व्यक्तिगत कृतियाँ के आधार पर कल्पित है। परम्परा-
गत कथाओं एवं कृतियों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है, किन्तु इसी
एवं भावात्मक व्यक्तिगत परम्परागत साहित्यकारों की कृतियों से आ-
वित जान पड़ती है। भाव एवं साहित्यिक अनुभूतियाँ सभी कल्पित ही हैं।
फिर भी यह काव्य एक नूतन शैली का उद्बोधक सज्ज काव्य माना गया
है।

काव्य के आरम्भ में ही कसन्त का के प्रारंभ
होते ही कोकिल की सन्देशवाचक कार्य में नियुक्त कर कवि ने अपनी दृष्टि
निरीलाक काल्पनिक शक्ति का सुपरिचय दिया है, क्योंकि कोकिल के मधुर
पंचम स्वर की सुनते ही बिहारी नायक की अपनी प्रिया के मधुर कण्ठ स्वर
की स्मृति तीव्र हो उठती है तथा कोकिल ही अपने मधुर ध्वनि के द्वारा
मानवी प्रियाओं की अपने प्रियतमों से मिलने के लिए प्रेरित करता है।

इसके अतिरिक्त एक अन्य कारण यह भी है कि - पक्षी का स्वर
कालीय साहित्यकारों के वर्णनों एवं प्रतिपाद्य विषयों के वाक्यगुण
का केन्द्र बिन्दु है, शब्द माधुर्य से ही काव्यकारों का काव्य जाग्रत होता
है। अतः प्रकृति की समशीलता के विकास में कोकिल के मधुर शब्दों का
अत्यधिक योगदान है।

उपयुक्त कारणों की दृष्टि में यह कह ही
कवि उदय ने अपने काव्य में 'कीर्ति' की संदेश वाहक बनाया। अतः
कीर्ति द्वारा संदेश भेज जाने पर ही प्रस्तुत काव्य का नाम कीर्ति संदेश
रहा।

अतः केन्द्रीय सन्देश काव्यकारों में कवि उदय
एवं उनकी कृति का उत्कृष्ट स्थान है।

उदय शृंगारिक कवि थे, अतएव उनका काव्य
शृंगारिक काव्य है, जिसमें बाध्यात्मिक स्थानुभूति विशिष्ट प्रकार है
अभिव्यक्त हुई है। शृंगारिक सौन्दर्य होने हुए भी आन्तरिक सौन्दर्य,
जिसमें नैसर्गिक अभिव्यक्तियों का बाहुल्य है।

मानव हृदय की प्रेम वृत्ति को लेकर ही कवि
ने अपने काव्य में शृंगार रस को प्रसारित किया है, जिसके फलस्वरूप उनको
यह सम्पूर्ण रचना प्रेम प्रधान रचना हो गई है। विरह व्यक्तित्व हृदय की
वेदना को शृंगार रस के उत्कृष्ट सौन्दर्य द्वारा कवि ने अभिव्यक्त करने
का प्रयास किया है।

कीर्ति संदेश एक प्रेम प्रधान सण्ड काव्य है
जिसमें कवि ने प्रकृति को पृष्ठभूमि बनाकर विप्रलम्भ शृंगार का उत्थान
मनोरम चित्र खींचा है। इसका उदय विरहजनित पृष्ठभूमि में हुआ है।
अतएव विप्रलम्भ शृंगार की सन्देश काव्यों का जीवन माना जाता है।

को० सं० एक विरहानल-कुण्ड ही है, क्योंकि यह हृदय को इवित करने वाली विप्रसन्न को एक करुण मोतिका है, जिसमें किसी अलौकिक शक्तिके द्वारा उपकरण किये जाने के फलस्वरूप प्रिया के विमुख हृद नायक के व्यथित हृदय की वेदना सुप्त सरस कथा है। को० सं० के प्रति श्लोक के शब्द-शब्द एवं वचन अक्षर में विरह व्यथित हृदय की दीर्घ निश्वास एवं भ्रम धड़कन सुनाई देती है। संपूर्ण काव्य ही विरह वर्णन के जीत प्रीत है। किन्तु कहीं कहीं शृंगार के संयोग पदा का वर्णन पाया जाता है। क्योंकि विरह के पूर्व प्रिया का मिलन तथा विरहकाल समाप्ति के अनन्तर भी प्रिया का संयोग क्योंकि विरह के अतीत काल में एवं अनगत काल में भी प्रिया मिलन का दीक्षित मिलता है, अतः संयोग शृंगार भी किसी न किसी रूप में एक काव्य में है ही। विरह व्यथित हृदय की ऐसी वेदना है कि वृद्धयन्तों को शृंगार रस के स्थान पर करुण रस की ही प्रीति होने लगती है। समग्र काव्य में स्थायी भाव रति है, किन्तु उसमें नायक नायिका के वियोग वर्णन में चिन्ता, स्मृति, उत्कण्ठा, दैन्य-विषाद, शंका, उन्माद तथा स्वप्न आदि संजारी भावों का ही अत्यधिक वर्णन हुवा है।

काव्य में विप्रसन्न शृंगार एवं करुण रस को अधिकता होने के कारण ही, कवि ने विषयानुसृत पैदाक्रान्ता इन्द्र की कुता है जिसकी मन्थर तय में एक कण्ठ से श्वास लेती सुनाई पड़ती है।

अनकी कला बुद्धिका ने विविध कर्तारों के वर्णों से अत्यन्त मोहर सीन्दर्य-चित्रों की दृष्टि की है। यद्यपि इन्होंने

रूप, उत्प्रेक्षा, यमक, श्लेष, अतिशयोक्ति, अनुप्रास, प्रार्तिमान, विरोध इत्यादि वन्यान्व तत्त्वार्थ व्यंजनों को मनोरम ढंग से मिलित किया है, तथापि काबिदास के समान उनकी उपमाओं को बड़ा अपना विशेष महत्व रखती हैं।

का: भाव पदा एवं कलापदा- दोनों की दृष्टि से यह काव्य महत्वपूर्ण है।

कवि उदय के काव्य की भाषा कीर्ति की बाणों की तरह मधुर है, भाव माधुर्य काळ ती करना हो गया ? गुंजार रसानुसृत प्रसादगुण युक्त तलित भाषा में काव्य लिखा गया है।

उनकी शैली में स्वाभाविकता एवं सरसता है। वह सरल तथा प्रसादपूर्ण है। तन्मि तन्मि समास, विलिख कल्पना एवं दुक्क तत्त्वों का भाव है। का: रन्हीं अपनेकाव्य में वैदर्भी रीति, प्रसाद तथा माधुर्य गुण का ही आनन्द लिया है।

उदय ने तत्त्वों का कीर्तलपूर्ण नयन एवं कलात्मक प्रयोग कर भाषा की अधिकतम लातित्य, माधुर्य तथा भाव प्रचणोया प्रदान की और सुतलित कन्द द्वारा गयता का रेशा फूट दिया, जो अमिश्यक्ति की तोष कति में सहायक हुआ ।

की० सं० काव्य में स्थान ज्ञान पर भावपूर्ण बड़ी सुन्दर एवं सरल सुक्तिर्गा दृष्टिगीमर होती है।

कौ० सं० काव्य प्रारम्भ से लेकर अन्त तक प्राकृतिक दृश्यों को मनोरम भाँकी दिखाता चलता है, स्पष्ट स्पष्ट होता है, कि इनकी प्रकृति से लगाव है। इसीलिए इनके काव्य में प्रकृति के प्रति सच्चा प्रेम, पाया जाता है। इनकी प्रकृति चित्रण विशद, सजीव, वर्तकृति एवं सुस्पष्ट निरोपण शक्ति का परिचायक है।

कवि ने दूत का जन्म भी प्रकृति से ही किया है। वे प्रकृति की कृतनता में विश्वास रखते थे। अतः प्रकृति के साथ कृतन प्राणों का तादात्म्य स्थापित किया है।

मार्ग वर्णन प्रसंग में कवि ने प्राकृतिक सौन्दर्य चित्रण द्वारा तमिलनाडु प्रदेश में स्थित कांची से लेकर केरल प्रदेश में स्थित जयन्तमंगलम् नगर तक जाने पर दोनों नगरों के मध्य में स्थित विभिन्न दोनों के प्राकृतिक समणीय दृश्यों पर- पहाड़ियाँ, पर्वतों, नदियाँ, वन, वृक्षों, उषानों, तलाबों, तपोवनों, मंदिरों, ग्रामों, नगरों एवं महा-सागर, सरोवर इत्यादि का क्रमबद्ध, यथार्थ, सुस्पष्ट, सजीव तथा सरस चित्रण प्रस्तुत किया है। इस वर्णन प्रसंग में कवि ने सुरम्य स्थलों एवं प्राकृतिक दृश्यों पर कुछ ठहर कर, भाषणपूर्ण ढंग से तत्त्वस्थलों के सुन्दर शब्द चित्र उपस्थित किये हैं।

दक्षिण भारत में स्थित पर्वत, पठार, सागर एवं विभिन्न नदियाँ तथा विशिष्ट नगरों इत्यादि की भौगोलिक स्थिति उनके समस्त चित्रपट सदृश्य स्पष्ट थी। इसमें वर्णित विस्तृत ५ भागों को भाँकी से सिद्ध होता है कि इन सभी से इन कवि का साक्षात् परिचय

या न कि पुस्तकों में पढ़ने या सुनने से । निःसन्देह संपूर्ण दक्षिण भारत का पश्चिमण करने के पश्चात् ही उन्होंने को० सं० का सूजन किया होगा।

पूर्व भाग तो प्रकृति के एक से एक सुन्दर चित्रों से भरा पड़ा है। अतः यह काव्य तत्कालीन के एक प्रवेश का एक सुरमणीय चित्र प्रस्तुत करता है। को० सं० में वर्णित प्रकृति और मानव का यह अतन साम्यबन्ध - उनके व्यापारों की बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप में स्थिति बहिर्तीय है।

काव्य का सन्देह वाक्य 'कोकिल' भी मानवीकरण का सुन्दर उदाहरण है, जिसमें कवि ने मानवात्मा के समावेश में वपुर्ष कीलक से काम लिया है, सन्देहवाक्य कोकिल अपनी स्थाय स्थल की झोड़ कर किसी भी स्थल पर तमानवीय प्रतीत कैंनहीं होता । काव्य के अन्त में नाक उसके निर्मित की तुल्य कामना करता हुआ उसे वाणीवादि धेती हुए कहता है :

“ मेरी तरह तुम्हारा अपनी प्रेक्षी से विप्रयोग का प्रसंग कभी न उपदिखा ही । ”

इसके अतिरिक्त पूर्ण नदीका वर्णन प्रस्तुत करते समय कवि ने नदी में नायिका का वारीप कर मानवीकरण का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार इनके काव्य में एकबीर प्रकृति का स्वतन्त्र रूप में वर्णन मिलता है एवं वृक्षों और प्रकृति को प्रदत्त मानवीय मनोभावों की अभिव्यक्ति का चित्रण प्राप्त होती है।

प्राकृतिक सौन्दर्य चित्रण द्वारा कवि ने इस काव्य को उत्कृष्ट बनाने की चेष्टा की है एवं प्राकृतिक सौन्दर्य को चित्रित करने में कवि ने बहुत कौशल प्रदर्शित किया है।

इस चूंगार प्रधान संदेश काव्य में उत्कृष्ट काव्य कौशल एवं निरूपित लोक तत्वों का ऐसा मणिकर्मण्य संयोग उपलब्ध है कि एक ओर जहाँ जन जीवन की कृत्रिम भावकियाँ दिखाई देती हैं, वहाँ दुसरी ओर अपनी देव काल, भारतीय काव्य गरिमा का भी परिचायक है।

काव्यगत विशिष्टताओं के बलिस्थित केरल प्रान्त के भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं धर्मार्थिक, सांस्कृतिक, कलात्मक अध्ययन के बिना ही भी यह काव्य बहुत महत्वपूर्ण है।

प्राचीन काल में केरल प्रान्त में कौन कौन से नगर ग्राम थे, वहाँ किन किन राजाओं का शासन रहा था तथा जनता का उस समय जीवन किस प्रकार का था- इत्यादि पर यह काव्य पर्याप्त प्रकार से उल्लेख करता हुआ प्रतीत होता है। काव्य में विभिन्न नदियाँ, नगरों, ग्रामों एवं महासागर, फलित इत्यादि का वर्णन होने के कारण तत्कालीन भौगोलिक परिस्थितियों पर अच्छा प्रकार पड़ता है। बलिस्थित भारत के नगरों, नदियों तीर्थों एवं प्रमुख विद्वानों के वर्णन ने काव्य को उपादेयता और भी बढ़ा दी है। इन सभी के द्वारा तत्कालीन राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों पर भी अच्छा प्रकार पड़ता है। स्नान स्थान पर शिवजी, रत्ननाथ, विष्णु, भद्रकालि, बंडिका, पावती, लक्ष्मी इत्यादि देवी-

देवताओं के वर्णन से कवि की व्यक्तिगत- भावना का परिचय मिलता है। कवि ने मार्ग में पड़ने वाले विविध देवी देवताओं की समान ढंढा के साथ स्तुति की है जिससे कवि की धार्मिक भावना तथा उदारता का भी परिचय मिलता है।

संक्षेप में एक वाक्य में हम यह कह सकते हैं कि उदयक का काव्य - काव्यनिक कथावस्तु, उदारता- कल्पना, शब्द, व्यं, भाषा की भाव का लक्षिर सामयिक, सुसंस्कृत- पद-विन्यास, प्रसुर-प्रसाद-गुण-सुन्दर, रसानुसृत-मधुर-भाषा-विश्वरूपा, सैतनिकता वा लता , माधुर्यता एवं गेयता , भाषा की उत्कृष्ट करने वाले विविध उत्कृष्ट, वर्णनों की संक्षिप्त तथा प्रभावित बनाने के लिए कलात्मक सृष्टि वैपुल्य , समन्वित प्रकृति चित्रण तथा सरल सुन्दरता से सुन्दरतम उद्भावना ज्ञायादि विशिष्ट गुणों के कारण उदयक काव्य कला का चरम निदर्शन है, एवं संक्षेप काव्यों में उसका प्रमुख स्थान है।

इस प्रकार कवि उदयक ने साहित्यिक परम्पराओं का पालन करते हुए इस संक्षेप काव्य का सुजन किया है। इनको साहित्यिक अभिव्यक्तियों तत्कालीन काव्यकारों में उत्कृष्ट स्थान रखती है। इनके को० सं० काव्य का साहित्यिक मूल्यनिर्देश करते हुए समालोचनात्मक अध्ययन के आधार पर कवि उदयक को एक उत्कृष्ट काव्यकार मानने में संदिग्ध नहीं होता ।

संस्कृत- ग्रीक- तुर्की

| | |
|---------------|---|
| ब्रह्माव्यायी | पाणिनि , व्या० ब्रह्मदत्त विशाख, ट्रस्ट ग्रीक मासा, १९६४ |
| तन्त्र | श्री० मेधसूतार, बायसकीर्ण इतिवर्षिटी प्रेस, बन्धन |
| काव्यप्रकाश | चम्पट मट्ट , व्या० वमरेन्द्र, उफेन्द्र मोहन, पब्लिशिंग हाउस, कलकत्ता, १९३९ |
| कोकिल सम्बन्ध | उदयल , श्री० एम० पी० उन्नि , कासिब रुक हाउस, एम० पी० रोड, विवेन्द्रम १९७२ |
| इन्दीमबरो | रामधन मट्टाचार्य , मैट्रोपोलिटन एण्ड पब्लिशिंग हाउस, कलकत्ता, (१९३५) |
| बावक | बानु० भदन्त बानन्द कौसल्याम्, हिन्दी साहित्य सम्पन्न, प्रयाग , (गण्ड सण्ड) |
| नाट्यशास्त्र | भरतमुनि , जीसम्भा संस्कृत सीरिज |
| पञ्चमृत | धीयी , विवेक पब्लिकेशन्स, कलौगढ़ , १९७८ |
| पश्चिमापारुष | उदयल , बीबानंद विभासागर कलकत्ता, १९७८ |
| महाभारत | व्यास मुनि, चम्पट ईत्करण, कृष्ण पन्ना |

| | |
|--------------------------|--|
| मेषकृत | का सिदार , बी० बी० जीपरी, जंल प्रान्य- वाणी, बुबीध भरत मल्लिका, के० एन० काटजू सीरिब, कलकत्ता |
| मेषकृत | एस० के० डे, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली |
| यसुधकिता : | वानम्बाजम , १९८० ई० |
| रामायण | वाल्मीकि , स्टीम प्रेस, कल्याण , बम्बई |
| सामवेद संकिता | ई० पी० रामलक्ष्म शर्मा, १९२० |
| साहित्यकर्मण | विश्वनाथ, शासिग्राम हास्ती, पीतीचाल बारासी दास, बंगली रोड, फावरतनगर, नयी दिल्ली |
| मोमदुभागवत | गीता प्रेस, गोरखपुर |
| संस्कृत कोश | |
| अमरकोश | अमरकोश , जीसम्बा संस्कृत सीरिब, वाराणसी |
| संस्कृत शब्दार्थ कोस्तुम | मसुर्वदी, हारिका प्रसाद शर्मा, रामनारायण, बिनीप्रसाद, ग्लाहाबाद |

हिन्दी-ग्रीय-सूची

| | |
|------------------------|---|
| बासाकिशोर | आधुनिक नीतिकाल्य का स्वल्प वीर विकास, प्रथम संस्करण, १९७१, विश्व- विद्यालय प्रकाशन, वाराणसी |
| के०बी० बासकुष्ण पिल्लै | केशवः भारतवर्ष माता- १७, कश्मीरी गेट, नयी दिल्ली -६ १९७१ |
| चन्द्रबन्दी पाण्डेय | काशिदास, मीतीदास बनासीदास, बंगला रोड, जवाहरनगर, नयी दिल्ली |
| परमानंद शास्त्री | संस्कृत नीतिकाल्य का विकास, प्रकाशन प्रतिष्ठान, मेरठ |
| पाण्डेय नानुराम व्यास | संस्कृत साहित्य की स्मृति, द्वितीय संस्करण |
| बलदेव उपाध्याय | संस्कृत साहित्य का इतिहास, ज्ञानपीठ, बनारस, अष्ट संस्करणा १९६० |
| बासकीरि डेडडी | दमिलनाडु- भारत वर्ण माता -२, कश्मीरी गेट, दिल्ली |
| भगवतहरण उपाध्याय | काशिदास का भारत, ज्ञानपीठ, दिल्ली, १९७१ |
| रत्नमयी देवी दीपावत | केशव साहित्य दर्शन |

| | |
|---------------------|---|
| रामकृष्णर बाबार्थ | संस्कृत के संवित काव्य , वावर्त प्रेस, कलौर |
| रानक्रुताप त्रिपाठी | काविदास ग्रीषातली, कितान मसु, क्ताहाबाद |
| बानोस्वर विषाईकार | काविदास वीर उसकी काव्यकता , पीतो तास बनारसीबास, बंगली रीठ, ज्वाहरनगर, नयी दिल्ली- ६ |
| बाबस्वति गीरीता | संस्कृत साहित्य का इतिहास, जीतम्बा कक्क विषाभवन, विषावितास प्रेस, बाराणसी १६६० ई० |
| बाभुबैव तरुण कृपात | मिषवुत एक कव्ययत, रावकपस , कसर साहित्य-३ |
| कल्याणरायण पाण्डेय | संस्कृत साहित्य का बालीबनात्मक कव्ययत, साहित्य मीटार, मेरठ, १६६६ ई० |

ENGLISH BOOKS

- B.C. Law** : Historical Geography of Ancient India.
- K. Kharjanni Raja** : The Contribution of Kerala to Sanskrit Literature, 1988 , University of Madras, Madras.
- K.R. Srinivasan** : Temples of South India
- M. Krishnamachariar** : History of Classical Sanskrit Literature, Motilal Banarasi Das, Delhi.7 , 1970
- V. Raghvan** : New Catalogue's Catalogerium Vols. I, VII) University of Madras, Madras.
- Vaman Shivram Apte** : The Student's English Sanskrit Dictionary
- Sanskrit Dictionary
Motilal Banarasi Dass, Delhi.7.